क्रम

मूल्य दो रुपये

ग्यारहवां सस्करण 1971
शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली, मे मुद्रित

JATAK KATHAEN (Stories for children)
by Anand Kumar

मूल्य द

१

पेट का दूत

प्राचीन काल में एक राजा भोजन का बहुत शौकीन था। शौक का काम प्रायः लोग दूसरों को दिखाकर करते हैं। राजा को भी अधिक से अधिक आदमियों के आगे शान से खाने में मजा आता था। इसके लिए उसने अपने राजद्वार के सामने एक सुन्दर भोजनशाला बनवाई थी। उसमें दोपहर के समय बहुत-से दर्शकों के सामने बैठकर राजा बढ़िया राजसी भोजन करता था। वह गपागप भांति-भांति के व्यंजन खाता और लोग खड़े-खड़े ताकते। खाने का यह तमाशा कभी-कभी नहीं, नित्य होता था।

एक दिन राजा नित्य की भांति खाने बैठा। उस दिन दर्शकों की भारी भीड़ थी। लोग ललचाई आंखों से राजा की पेट-पूजा देख रहे थे। सोने के थाल में तरह-तरह के सुन्दर, स्वादिष्ट पदार्थ देखकर सबके मुंह में पानी भर आता था। सभी अपने-अपने लोभ दबाने में लगे थे।

उस भीड मे कही से एक महालोभी मनुष्य भी उस दिन आ गया था। वह दूर से राजा को बढिया-बढिया माल खाते देखकर लोभ से व्याकुल हो गया। कुछ देर तक तो वह खडे-खडे लार टपकाता रहा, लेकिन बाद मे उससे लोभ के मारे रहा नही गया। राजा से तो किसीको कुछ मिलने की आशा थी नही, इसलिए उसने स्वय खाने पर टूट पडने की ठान ली। वह अपने दोनो हाथ उठाकर 'मै दूत हू, मैं दूत हू' कहता हुआ आगे बढा।

उस समय दूत को राजा के पास तक जाने का विशेष अधिकार था। कोई उसके रास्ते में रुकावट नही डाल सकता था। उपस्थित नागरिको ने उसे कही का राजदूत मानकर तुरन्त राजा के पास जाने का रास्ता दे दिया। वह बडी आसानी से राजा के पास पहुच गया और बिना कुछ कहे-सुने थाल मे से मन-चाही चीजें उठा-उठाकर खाने लगा। लोभ के मारे न उसे डर लगा न सकोच।

खाने मे मक्खी पडने से वह खराब हो जाता है। यहा तो आदमी पड गया था। राजा के रग मे भग पड गया। दर्शक लोग उस आदमी का दुस्साहस देखकर दग रह गए और उसे बुरा-भला कहने लगे। सिपाही

लोग चारो ओर से 'पकडो-पकडो,' 'मारो-मारो' कहते हुए दौड पडे ।

राजा ने स्वय भोजन करना बन्द कर दिया। सिपाही लोग उसे पकडकर उठाने लगे । राजा ने उन्हे रोक दिया और लोभी आदमी को भरपेट भोजन करने की स्वतन्त्रता दे दी ।

जब वह आदमी खा-पीकर तृप्त हो गया और अपने पेट पर हाथ फेरते हुए डकारे लेने लगा, तब राजा ने उससे पूछा, "क्यो जी ? तुम किसके दूत हो ? किसके कहने से और किस प्रयोजन से यहा आए हो ?"

वह आदमी निर्भय होकर बोला, "महाराज, मैं उन पेट महाराज का दूत हू जिसके वश मे सारा ससार है, जिसकी सेवा मे ससार के सभी प्राणी दिन-रात लगे रहते है और घर छोडकर परदेश मे दर-दर मारे-मारे फिरते है, मेहनत-मजदूरी करते है तथा नीचो और शत्रुओ के आगे भी बेशर्मी से हाथ फैला देते है । जिन पेटजी की आज्ञा आप भी मानते है, उन्हीका मे एक तुच्छ दूत हू । मैं यहा उन्हीकी इच्छा पूरी करने आया हू ।"

राजा इस उत्तर को सुनकर मौन हो गया और सोचने लगा—यह आदमी ठीक ही तो कहता है, ससार

के सभी लोग पेट की सेवा में दिन-रात लगे रहते हैं। उसीके लिए कोई नौकरी करता है, कोई व्यापार; कोई चोरी करता है और कोई ठगी। सभी तो पेट के वश मे हैं। मैं भी पेट की पूजा में लगा रहता हूं। वास्तव में, पेट की माया ही संसार को चलाती है, आदमी उसीके लिए सब कुछ करता है।

इस विचार के आते ही राजा का क्रोध शान्त हो गया। जब उसने अपने को पेट का चाकर समझ लिया तो दूसरे पेट के दूत के लिए उसके मन में सहानुभूति अपने-आप पैदा हो गई। उस आदमी से राजा ने अमूल्य ज्ञान की बात पाई थी। उसके बदले में उसने उसे पेट-पूजा के लिए बहुत-सा धन सधन्यवाद देकर विदा किया।

२

दूर ही से नमस्कार

वहुत दिनो की वात है, गगाजी के तट पर दो सन्यासी अलग-अलग कुटी वनाकर रहते थे। दोनो सगे भाई थे और ससार से वैराग्य लेने के वाद भी आपस मे मिलते-जुलते रहते थे।

एक दिन छोटा भाई अपनी कुटी मे अकेला वैठा था। उसी समय मणिकण्ठ नाम का एक नागराज घूमता-घामता वहा आया और उसके पास प्रणाम करके वैठ गया। दोनो मे वाते होने लगी। दोनो एक-दूसरे से मिलकर वहुत प्रसन्न हुए।

इसके वाद मणिकण्ठ नित्य आने लगा। दोनो की मित्रता दिन-दिन गाढी होने लगी। मणिकण्ठ को उससे इतना प्रेम हो गया कि वह विना गले मिले कभी उससे अलग नही होता था। वहा से जाने के पहले वह स्नेहपूर्वक फण निकालकर अपने प्रेमी मित्र से लिपट ाता। इधर तो वह स्नेह दिखाता, उधर सन्यासी ाय मे व्याकुल हो जाता। वही हाल था—'वे डालत

रस आपने, उनके फाटत अग ।' उससे न कुछ कहते वनता था और न सहते । कोई प्रेम से अपने घर आए और प्रेम दिखाए तो उसे कैसे रोका जाए ! लेकिन यह प्रेम वडा भयकर था। साप जव उसके गले से लिपटता तो ऐमा लगता मानो गले मे मौत का फन्दा पड गया। वेचारा डर के मारे सूखा जाता । नागराज प्रेम से विह्वल होकर वडी देर तक लिपटा ही रहता था। सन्यासी के लिए वह घोर सकट का समय होता था। यह एक दिन की वात तो थी नही । नागराज ने तो मित्र का घर देख लिया था। रोज वह एक वार हाजिरी देने जरूर आता था। मतलव यह कि सन्यासी के प्राण रोज ही सकट मे पडे रहते थे। भय-चिन्ता से वह धीरे-धीरे सूखने लगा ।

एक दिन वह अपने भाई से मिलने गया। वडे भाई ने उसे वहुत दुर्वल और उदास देखकर उससे इसका कारण पूछा। छोटे भाई ने अपनी रोज की मुसीवत कह सुनाई। इसपर वडे भाई ने पूछा, "तुम उससे मित्रता रखना चाहते हो या नही ?"

छोटा सन्यासी वोला, "अरे नही भैया ! ऐसे मित्रो से भगवान् वचाए । मैं तो उससे दूर भागना चाहता हू, लेकिन वह मेरा पिण्ड ही नही छोडता !

उसका तो ध्यान आते ही मेरे अंग-अंग सूख जाते हैं; लेकिन उसे मैं कैसे रोकूं ?"

बड़े संन्यासी ने फिर पूछा, "अच्छा यह बताओ कि वह आभूषण पहनकर आता है या यों ही।"

छोटा सन्यासी बोला, "सिर पर वह एक बड़ी चमकदार मणि धारण किए रहता है; वह उसे बहुत प्रिय है।"

बड़े सन्यासी ने कहा, "बस, तो तुम कल उसके आते ही उस मणि को उससे मांगना। यदि वह न दे तो परसों जैसे ही वह कुटी के सामने पहुंचे, तुरन्त मांगना। और यदि उस दिन भी न दे तो तरसों जैसे ही वह नदी में से निकलने लगे, तुम तीर पर खड़े होकर मणि की याचना करना।"

छोटा सन्यासी बड़े भाई से यह नीति-शिक्षा लेकर लौट गया। दूसरे दिन जैसे ही नागराज कुटी में आकर बैठने लगा, वैसे ही छोटे सन्यासी ने कहा, "मित्रवर ! आपकी यह मणि मुझे बहुत अच्छी लगती है। आप इसे मुझे भेंट कर दें तो मुझे अपार प्रसन्नता होगी।"

नागराज ने उसके विशेष आग्रह करने से पहले ही वहां से चला जाना उचित समझा। वह बीच ही में बात काटकर बोला, "भाई ! आज तो मुझे एक

आवश्यक काम से एक दूसरी जगह जाना है, सो मैं सिर्फ हाज़िरी देने आया हू, आओ गले मिल ले तो जाए।"

यह कहकर नागराज गले से लिपट गया। उस दिन सन्यासी को और भी अधिक भय लगा, क्योकि उसे शका थी कि कही मित्रजी नाराज न हो गए हों। नागराज उससे मिल-मिलाकर चला गया।

दूसरे दिन उसने सोचा कि सन्यासी के मन का लोभ शान्त हो गया होगा। इसलिए वह ठीक समय पर फिर मिलने पहुचा। उस दिन सन्यासी ने कुटी के वाहर ही उसका स्वागत करते हुए कहा, "मित्रवर! आज तो मैं विना कुछ भेट लिए आपको जाने ही न दूगा? अपनी यह मणि दे दीजिए न! क्यो तरसाते है?"

नागराज चौककर वोला, "सुनो भाई! अच्छे मिले! मैं तो कही कहने को चला आया था कि आज मेरी प्रतीक्षा मत करना, मुझे एक आवश्यक काम है। आओ गले मिल लें, अव कल वाते करेंगे।"

यह कहते-कहते नागराज पहले की भाति उसके गले से लिपट गया। सन्यासी भुजगभूपण शिव की तरह खडे-खडे मन ही मन 'शिव-शिव' का जाप करता रहा।

तीसरे दिन नागराज का मन कुछ पिछडने लगा,

लेकिन मित्र के साथ गप-शप करने का चस्का लग चुका था। वह यह सोचकर चल पडा कि संन्यासी की तृष्णा इतने समय में अवश्य बुझ गई होगी। जैसे ही उसने पानी के ऊपर सिर निकाला, वैसे ही तीर से सन्यासी ने पुकारकर कहा, "आओ, आओ, मित्र ! मैं तो तुम्हारी मणि के लिए बेचैन होकर बडी देर से खडे-खडे देख रहा हूं; आज इसे पहले दे दो, तब आगे बात होगी।"

नागराज के पास मणि-रत्नो की कमी नही थी, फिर भी, उस आदमी की याचना उसे प्रिय नही लगी। उसके मन में लोभी मित्र के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया। वह उसे दूर से ही नमस्कार करके चला गया और फिर नही आया। उस दिन से दोनो की मित्रता भग हो गई।

वास्तव में बहुत मांगने वाले से मनुष्य द्वेष करने लगता है; इसलिए कभी किसीसे उसकी प्रिय वस्तु मांगना ठीक नही है—

न तं याचे यस्स पियं जिगिंसे,
देस्सो होत अतियाचनाय।

३

सच्चा सपूत

पूर्वकाल मे वसिट्ठक नाम का एक पितृभक्त युवक था। उसकी मा मर चुकी थी और बाप बहुत वृद्ध हो चुका था। घर मे उसकी सेवा करने वाला कोई दूसरा नही था। इसलिए वसिट्ठक ही दिन-रात तन-मन से पिता की सेवा मे लगा रहता था। घर के काम से छुट्टी पाने पर वह रोज़ बाहर जाकर कमा भी लाता था।

एक दिन बूढे बाप ने उससे कहा, "बेटा, इस तरह कब तक चलेगा ? कमाना और घर को सभालना साथ-साथ नही चल सकता। मैं तुम्हारे लिए अब एक बहू लाना चाहता हू, तब घर के काम-काज से तुम्हे फ़ुर्सत मिल जाएगी और तुम आराम पाओगे।"

वसिट्ठक बोला, "पिताजी, मैं अकेले आपको सभाल लूगा, किसी और की आवश्यकता नही है।"

पुत्र के बहुत रोकने पर भी वृद्ध पिता ने उसके लिए एक लडकी खोजकर दोनो का विवाह कर दिया। बहू के आने पर वसिट्ठक ने उसे सब बाते समझाकर

पिता की सेवा में लगा दिया।

बहू देखने-सुनने में तो भली, लेकिन स्वभाव की कुटिल थी। कुछ दिनों तक वह वृद्ध ससुर की सेवा करती रही। बाद में उसे यह बात खलने लगी कि उसका पति जो कुछ भी बाहर से कमाकर लाता है, उसे वह बूढ़े बाप को सौंप देता है। उसने सोचा कि बाप-बेटे में किसी तरह मन-मुटौवल करवा दूं तो वह अपनी कमाई उसे न देकर मुझे देने लगेगा। अब वह जान-बूझकर बुड्ढे ससुर को चिढाने की कोशिश करने लगी। उसके लिए कभी तो वह बहुत ठण्डा पानी ला देती और कभी बहुत गर्म; खाने में कभी नमक तेज कर देती और कभी कम; रोटी को कभी जला डालती और कभी अधपकी ही ससुर के आगे रख देती। बुड्ढा ससुर कुछ बोलता तो वह लड़ने-झगड़ने पर उतारू हो जाती और पति से शिकायत करती कि वे उसे दासी की तरह दुतकारते रहते हैं। कभी-कभी वह घर में चारों ओर स्वयं थूककर पति को दिखाती और कहती, "इन बूढेराम का हाल देखो! जहां चाहते हैं थूक देते हैं। मैं मना करती हूं तो मुझे चार बातें सुनाते हैं और मारने को दौड़ते हैं। मैं इनके साथ नहीं रहूंगी। इस बूढ़े खूसट ने घर को नरक बना दिया है।"

इस तरह वह रोज़ ज़हर उगलने लगी। वसिट्ठक इन बातो से ऊबकर एक दिन उससे बोला, "तुम्ही बताओ मैं क्या करू, जैसा कहो वैसा कर दू।"

स्त्री ने ऐंठकर कहा, "अब यह आदमी बहुत बूढा और रोगी होकर जीते-जी नरक भोग रहा है। तुम इसे ले जाकर श्मशान मे गाड आओ तो इसका और इस घर का भी उद्धार हो जाएगा। यदि तुम ऐसा न करोगे तो मैं कल ही घर से निकल जाऊगी। इस पाप को हटाओ तभी घर चलेगा।"

वसिट्ठक पर उसका जादू चल गया, उसने कहा, "ऐसा ही सही। लेकिन इसे अपने साथ ले कैसे जाऊ! यह आसानी से घर को छोडकर कही नही जाएगा।"

स्त्री बोली, "मैं बताती हू। ऐसा करो, आज रात मे इससे किसी दूर के ऋणी का नाम लेकर कहो कि वह मुझे आपके दिए हुए रुपये नही देता, इसलिए कल आप स्वय मेरे साथ गाडी मे चले चले तो शायद कर्ज़ा वसूल हो जाएगा। बुड्ढा इस बात पर ज़रूर राजी हो जाएगा। बस, उसे कल बडे सवेरे ही बैल-गाडी मे बिठाकर श्मशान-भूमि मे ले जाना और वही एक गड्ढा खोदकर उसीमे गाड देना। उसके बाद हल्ला मचा देना कि डाकू लोग सब कुछ लूटकर दादा

कौन जाने कहां पकड ले गए।"

वसिट्ठक इसके लिए तैयार हो गया। उसका एक सात वर्ष का बालक यह सब सुन रहा था। जब वसिट्ठक अपने बाप से दूसरे दिन चलने की बात तय करके लौटा तो वह बालक चुपचाप जाकर बाबा की खाट पर लेट गया।

बड़े तड़के वसिट्ठक ने गाडी जोती, उसमें कुदाल टोकरी रखी और फिर बाप को ले जाकर बैठाया। गाडी चलने लगी तो वह बालक भी हठ करके उसमे बैठ गया। वसिट्ठक ने उसकी विशेष चिन्ता नहीं की क्योकि वह निरा बालक था।

गाडी जब श्मशान मे पहुंच गई तो वसिट्ठक उन दोनो को उसीमें छोड़कर स्वयं कुदाल-टोकरी लेकर उतर पड़ा और वहा से कुछ दूर हटकर एकान्त में एक बडा गड्ढा खोदने लगा।

बालक थोडी देर बाद घूमता-घामता उसी ओर जा निकला। बाप को गड्ढा खोदते देखकर वह बोला, "बाबूजी, यहा आलू या शकरकन्द तो है नही, फिर आप क्यों इस तरह जमीन को खोद रहे है ?"

पाप सिर पर चढकर बोलता है। वसिट्ठक ने भी उसे बालक समझकर लापरवाही से कहा, "बेटा,

तुम्हारे बाबाजी को बुढापे और बीमारी से बहुत कष्ट भोगना पड रहा है। अब उनके लिए मरना ही सुख-दायक होगा, इसलिए मैं उन्हे जमीन मे गाडने के लिए बढिया गड्ढा खोद रहा हू।"

बालक बोला, "बाबूजी, यह तो बहुत बुरा काम है। बाप को जीते-जी गाड देना बडा पाप है।"

वसिट्ठक की मति भ्रष्ट हो गई थी। उसने बालक की बातो पर ध्यान नही दिया। थोडी देर बाद वह थककर सुस्ताने के लिए बैठ गया। तब बालक उसकी कुदाल लेकर वही एक दूसरा गड्ढा खोदने लगा।

वसिट्ठक ने बैठे-बैठे पूछा, "बेटा, तुम क्यो व्यर्थ का काम कर रहे हो ?"

बालक ने उत्तर दिया, "बाबूजी ! आप जब इसी तरह बूढे होगे तो मैं भी आपको जमीन मे गाड दूगा। यह गड्ढा मैं आपके लिए अभी से खोद देता हू। पिता का अनुकरण करना पुत्र का धर्म है। मैं आपकी चलाई प्रथा को टूटने नही दूगा।"

वसिट्ठक बिगडकर बोला, "चुप नालायक लडके ! तू मेरा पुत्र होकर भी मेरा अहित चाहता है !"

बालक ने कहा, "बाबूजी ! मैं तो आपको नरक मे गिरने से बचाना चाहता हू। आप घोर पाप करने

जा रहे हैं, आपको इसका बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। सोचिए तो सही, यह कैसा राक्षसी कर्म है!"

वसिट्ठक इस चेतावनी से सावधान हो गया। पुत्र को गले लगाकर वह बोला, "बेटा, सत्य कहते हो! मैं अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि तुम्हारी मां के कहने से ऐसा काम करने आया था।"

बालक ने फिर कहा, "बाबूजी! ऐसी पापिनी को तो घर से बाहर निकाल देना चाहिए। वह आपको और इस कुल को भी पाप के भयंकर गड्ढे में गिराने जा रही थी। यह साधारण अपराध नहीं है, घोर नीचता है।"

बालक के मुख से मानो भगवान ही बोल रहे थे। वसिट्ठक गिरते-गिरते सभल गया। बाप और बेटे को गाड़ी में बैठाकर वह तुरन्त घर की ओर लौट पड़ा। उसकी स्त्री उस दिन बहुत प्रसन्न थी, क्योंकि उसके घर का पाप टल गया था। वह घर की खूब सफाई करके अच्छे से अच्छा भोजन बनाकर पति की प्रतीक्षा कर रही थी। दूर से जब उसने देखा कि गाड़ी में बुड्ढा ससुर भी बैठा आ रहा है तो वह क्रोध से तिल-मिला उठी। उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। जैसे ही गाड़ी दरवाजे पर आकर रुकी, वह हाथ मटकाती हुई व्यंग्य स्वर में पति से बोली, "अरे तुम

इस जिन्दा लाश को फिर घर मे उठा लाए।"

वसिट्ठक अब अपने बाप का अपमान नही सह सकता था। उसने गाडी से उतरकर उस दुष्टा स्त्री को खूब पीटा और उसके बाद घर से हमेशा के लिए निकाल दिया।

स्त्री अपमानित होकर एक पडौसी के घर मे रहने लगी। उसे यह आशा थी कि कभी न कभी वसिट्ठक उसे मनाने आएगा। इसी आशा मे वह स्वय अभिमान से ऐंठी बैठी रही।

इधर वसिट्ठक का पुत्र यह चाहता था कि उसकी मा अब काफी दण्ड पा चुकी है, इसलिए अपने अपराध के लिए क्षमा मागकर फिर घर मे लौट आए। लेकिन इसका कोई रास्ता नही निकलता था। एक दिन वह अपने बाप से बोला, "बाबूजी! मेरे कहने से कल आप यह कहकर कि मैं अपना दूसरा विवाह तय करने जा रहा हू, यहा से गाडी मे कही चले जाइए और शाम तक घूम-फिरकर लौट आइए।"

वसिट्ठक पुत्र की बात कभी नही टालता था। दूसरे दिन वह सबसे यही बहाना बनाकर चला गया। यह बात उसकी पत्नी के कानो तक पहुच गई। वह भविष्य की कल्पना करके घबरा उठी और सारा मान

छोड़कर धीरे-धीरे अपने पुत्र के पास पहुंची। पुत्र के पैरों पर सिर रखकर उसने कहा, "बेटा ? मुझे तुम्हारा ही भरोसा है। तुम अपने बाप से कहकर मेरे अपराधों को क्षमा करवा दो और मुझे इस घर मे वापस बुलवा लो। अब मैं ऐसा कोई काम नही करूंगी।"

पुत्र ने मां की बात मान ली। शाम को बाप के लौटने पर वह उससे बोला, "बाबूजी ? अब मा को फिर से इस घर में बुला लीजिए। अब वह ठीक रास्ते पर आ गई है और अपने अपराध के लिए सच्चे हृदय मे क्षमा माग रही है। कैसी भी हो, वह आपकी धर्म-पत्नी और मेरी मा ही ठहरी !"

वसिष्ठक ने कहा, "बेटा, तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो जाकर उसे लिवा लाओ।"

बेटा जाकर अपनी मा को फिर घर में ले आया। वहा आकर उस स्त्री ने पति और ससुर से रो-रोकर अपने अपराधों के लिए क्षमा मागी। उसके सौभाग्य के दिन लौट आए। वह बहुत नेक बनकर सारे परिवार की सेवा करने लगी। उजड़ा घर फिर बस गया।

जिस सुपुत्र ने अपने पिता को पाप के गड्ढे से उबारा था, उसीने अपनी पतित माता का भी उद्धार कर दिया। वह कुल का सच्चा सपूत था।

४

भयंकर भ्रम

किसी समुद्र के किनारे बेल और तार के वृक्षो का एक बहुत बडा वन था। उसमे सभी तरह के छोटे-बडे जानवर रहते थे। एक बेल के पेड के पास एक खरगोश भी बिलकुल अकेला रहता था। वह कवि की तरह दूर-दूर की कल्पनाए करने मे बहुत कुशल था, प्राय जागते हुए भी सपने ही देखता था।

एक दिन खरगोश एक ताड के पेड के नीचे आराम से लेटा हुआ आकाश के तारे तोडने मे लगा था। उसकी बुद्धि ससार के एक कोने से दूसरे कोने तक दौड लगा रही थी। ससार की अनेक समस्याओ पर विचार करने के बाद वह एक विकट समस्या मे उलझ गया। वह सोचने लगा कि यदि पृथ्वी उलट गई तो क्या होगा? पृथ्वी के उलटने के भयकर दृश्य उसकी आखो के आगे नाचने लगे। उस भयकर काड की कल्पना ने वह बहुत व्यग्र हो उठा। ठीक उसी समय किसी पेड़ से एक पका बेल टूटकर एक ताड के पत्ते

"दुनिया उलट रही है, भागो, भागो, भागो!"

पर गिरा। खरगोश ने उसको गिरते नही देखा क्योकि उस समय तो वह आखे मूंदकर दुनिया की दुर्गति की कल्पना मे लगा था। लेकिन उसके गिरने की आवाज़ उसने सुन ली। उस आवाज़ को सुनकर वह चौंक पडा और सोचने लगा कि मालूम होता है, पृथ्वी सचमुच उलट रही है।

बस, फिर क्या था! पृथ्वी के उलटने की आशका करके खरगोश वहा से सिर पर पैर रखकर, 'भागो, भागो!' चिल्लाता हुआ भागा। रास्ते मे एक दूसरे खरगोश ने उसको इस तरह भागते देखकर पूछा, "अरे भाई! क्या हुआ, क्यो भागे जा रहे हो?"

पहला खरगोश बिना रुके यह कहता हुआ भागता ही चला गया, "अरे कुछ न पूछो, दुनिया उलट रही है, भागो, भागो, भागो!"

दूसरा खरगोश भी जान लेकर उसके साथ भागा। रास्ते मे कई खरगोश मिले, सबका यही हाल हुआ। इस तरह पूरे एक हजार खरगोश एक साथ मिलकर भागने लगे। एक हिरन भी इतने जीवो को भागते देखकर बिना कुछ सोचे-विचारे उनके साथ-साथ भागने लगा। भागने वाले एक-दूसरे से सुनकर यही कहते जाते थे, "दुनिया उलट रही है, भागो, भागो!"

इसको जो भी जीव सुनता, वही घबराकर भागने लगता था। जंगल के कितने ही सूअर, भैंसे, बैल, गैंडे, चीते, हाथी आदि दुनिया के उलटने की अफवाह सुनते ही खरगोश के पीछे-पीछे भागने लगे। इस प्रकार सारे जंगल में भगदड़ मच गई। चारों ओर से छोटे-बड़े जीव-जन्तु आंख मूंदकर भागते ही दिखाई देते थे।

वन के राजा सिंह ने सारे जीवों को इस तरह भागते देखकर एक से इसका कारण पूछा। उसने भागते हुए वही जवाब दिया, "दुनिया उलट रही है, भागो, भागो, भागो!"

सिंह को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने ऐसी असंभव बात पर विश्वास नहीं किया और यह समझ लिया कि सारे जीव भ्रम के शिकार हो गए हैं। वह उन्हें रोकने लगा। लेकिन वहां कौन किसकी सुनता था! सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे जा रहे थे। ऐसी दशा में, सिंह ने बड़ी बुद्धिमानी से आगे बढ़कर ऐसा घोर गर्जन किया कि सबके सब जीव डर के मारे जहां के तहां खड़े हो गए। तब वनराज ने एक-एक से इस सम्बन्ध में प्रश्न करना शुरू किया। पहले उसने हाथी से पूछा "तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि पृथ्वी उलट रही है? क्या तुमने अपनी आंखों से इसे उलटते देखा है?"

हाथी बोला, "नही महाराज ! मैंने स्वय तो नही देखा, लेकिन अमुक चीते के मुह से सुना है कि दुनिया उलट रही है। उन्हे सबके साथ भागते देखकर मैं भी भागने लगा।"

तब सिंह ने उस चीते से वही प्रश्न किया। उसने भी गैंडे का नाम लेकर ऐसा ही उत्तर दिया। अन्त मे होते-होते यह पता चला कि एक खरगोश ने दुनिया के उलटने की खबर फैलाई और सब उसीके कथन को सत्य मानकर भागे जा रहे थे। सिंह ने जब उस खरगोश से पूछा तो वह बोला, "हा, हा धर्मावतार, मैं लेटे-लेटे जो सोच रहा था, वही हुआ। मुझे दुनिया के उलटने की शका पहले ही हो गई थी। मैंने अपने कानो से घडाका-फडाका सुना है। उसीसे मुझे विश्वास हो गया कि दुनिया उलट रही है। दुनिया के उलटने की आवाज़ बडी भयकर थी मेरे राजा ! मेरा तो दिल दहल गया। अब कुशल नही है।"

सिंह उसके मिथ्या भय के रहस्य को समझ गया। सारे जीवो को ढाढस बधाने के लिए उसने इस घटना की सही-सही जाच करने का निश्चय करके कहा, "तुम लोग घबराओ मत, मैं स्वय इसका पता लगाने जाता हू।"

यह कहकर वह खरगोश को अपनी पीठ पर बैठा-

कर उस स्थान की ओर चला जहा पृथ्वी के उलटने का शब्द हुआ था। खरगोश के निवास-स्थान के पास पहुचकर सिंह ने उसे उतार दिया और कहा, "अब आगे-आगे चलो और मुझे वह स्थान दिखाओ जहा से तुम्हें धडाका-फडाका सुनाई पडता था।"

खरगोश गिडगिड़ाता हुआ बोला, "देव वहां जाने मे डर लगता है। कही मैं दुनिया के गड्ढे मे न गिर जाऊ। वही गिरकर तो दुनिया उलटी है।"

सिंह ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा, "घबराओ मत, मैं साथ हू। तुम दूर से खडे होकर मुझे वह स्थान दिखा दो।"

खरगोश कुछ दूरी पर जाकर खडा हो गया और बोला, "देखिए, देखिए, स्वामी! वही दुनिया गिरकर उलटी है। वही से ऐसा भयकर शब्द हुआ था मानो सारा ब्रह्माण्ड फट गया। ऐसा मालूम हुआ था कि दुनिया बारूद के गोले की तरह दग गई। अभी तक मेरे कानो में आवाज़ गूज रही है...।"

सिंह ने आगे बढकर उस स्थान को देखा। वहा ताड़ के पत्ते पर एक पका बेल छितराया पड़ा था। उसे देखते ही सिंह की समझ में सारी बात आ गई। वह खरगोश को पीठ पर बैठाकर उन पशुओ के पास

पहुचा जो भय से अधमरे हो गए थे। उनसे उसने सच्ची बात बताकर कहा, "तुम लोगो ने आखे मूंदकर ऐसी बेसिर-पैर की बात पर कैसे विश्वास कर लिया! अपनी बुद्धि से भी तो कुछ सोचना चाहिए था। अब चलकर देखो कि इस तुच्छ जीव ने किस तरह भयभीत होकर सारे जगल मे भ्रम फैला दिया है।"

वन के जीवो ने सिह के साथ जाकर जब स्वय सब कुछ देखा-समझा, तब उनकी जान मे जान आई। यदि सिह समय पर उनके भ्रम को न मिटाता तो वे सभी घबराकर समुद्र मे कूद पडते और मर जाते।

५

जैसी करनी वैसी भरनी

किसी गाव मे एक बडा ही अभागा वैद्य रहता था। उसका ठीक वही हाल था—'जापै दया करि हाथ धरै, तेहि हाथ गहै जमराज सवेरे।' बेचारे की कुछ चलती-चलाती नहीं थी।

कहावत है कि प्यासा आदमी कूप के पास जाता है, कूप प्यासे के पास नही जाता। लेकिन उस वैद्य की रीति-नीति उलटी थी। वह स्वय रोगियो की खोज मे इधर-उधर चक्कर लगाया करता था। एक दिन सारे गाव का दौरा करने पर भी उसे कोई रोगी या दवा का ग्राहक नहीं मिला। वह उदास होकर टहलता-टहलता गाव के बाहर तक चला गया। वहां एक वृक्ष के कोटर में उसने एक विषैले साप को सोते देखा। उसे देखते ही वैद्य को कुछ कमाने की एक तरकीब सूझ गई।

उस पेड से कुछ दूरी पर गाव के कई छोटे-छोटे लड़के खेल रहे थे। वैद्य ने सोचा कि यदि उनमे से किसी

लडके को साप से डसवा दू तो मुझे उसकी चिकित्सा का अवसर सहज मे मिल जाएगा और मैं एक अच्छी रकम पा जाऊगा ।

पेट के लिए लोग बडे-बडे पाप करने को तैयार हो जाते है । वैद्य ने स्वार्थवश उन अबोध बालको के जीवन को घोर सकट मे डालने का निश्चय कर लिया । वह घूमता-घामता उन लडको के पास गया और बोला, "भाई, कोई मैना का बच्चा लेगा ?"

एक चतुर बालक चटपट बोल उठा, "हा हा, मै लूंगा, कहा है दादा !"

वैद्य बोला, "मेरे साथ आओ, मैं दिखाता हू । अकेले चलो, नही तो हल्ला-गुल्ला सुनकर वह उड जाएगा ।"

वह उस लडके को उस वृक्ष के पास ले गया । वहा कोटर की ओर इशारा करके उस दुष्ट वैद्य ने कहा, "देखो, उसी कोटर मे है, धीरे-धीरे जाओ, हाथ डालकर निकाल लाओ ।"

लडके ने वृक्ष पर चढकर कोटर मे हाथ डाला । वहा उसकी मुट्ठी मे जो भी चीज आई उसे उसने चटपट पकडकर बाहर निकाला । देखा तो मैना के बच्चे की जगह उसके हाथ मे साप की गरदन आ गई थी ।

उसने उसी समय झटके के साथ उस साप को दूर फेक दिया । सयोग से वह वैद्य ही के सिर पर जाकर गिरा । वैद्य अपने बचाव के लिए बडे जोर से उछला, लेकिन साप उसकी गर्दन से लिपट ही गया । लाख कोशिश करने पर भी वैद्य उस पाप से छुटकारा नही पा सका । उसे अपनी करनी का फल तुरन्त मिल गया । साप ने उसे डस लिया । वह वही छटपटाकर गिर पडा और कुछ ही क्षणो मे मर गया ।

६

संगठन की महिमा

बहुत दिन हुए, एक बार एक बढ़ई जंगल से लकड़ी लेने गया। वहां उसे एक गड्ढे में एक सूअर का बच्चा पड़ा मिला। बढ़ई उसको गड्ढे में से निकालकर घर ले आया और बड़े प्रेम से पालने लगा। सूअर का बच्चा धीरे-धीरे बढ़कर खूब मोटा-ताजा हो गया। वह दिन-भर अपने स्वामी के साथ ही रहता था। जब बढ़ई जंगल जाता तो वह मुंह में उसकी कुल्हाड़ी पकड़कर साथ-साथ ले जाता। अधकटे पेड़ों को वह धकेलकर सहज ही में गिरा देता; और बढ़ई की सुविधा के लिए गिरे पेड़ों की डालियों को इधर-उधर उलट देता था। इस प्रकार बढ़ई के लिए वह बहुत काम का साबित हुआ। आदमी को काम प्यारा होता है, चाम नहीं। बढ़ई को भी वह काम का जीव बहुत प्यारा था। उसे वह तच्छक सूअर के नाम से पुकारता था।

इस भय से कि कहीं उसे जंगली जीव समझकर कोई मार न डाले, बढ़ई अपने तच्छक सूअर को हमेशा

अपने साथ ही रखता था। गाव के लोग उस जंगली सूअर से बहुत चिढते और घबराते थे। इसलिए उनकी ओर से बढई को बहुत सावधान रहना पडता था। उन लोगो को मौका मिलता तो उस सूअर को मारे बिना न छोडते।

बहुत दिनो तक अपने प्यारे सूअर को साथ रखने के बाद एक दिन बढई ने उसे गाववालो के कोप से बचाने के लिए जगल मे छोड आने का निश्चय कर लिया। यद्यपि यह बहुत दु ख की बात थी, लेकिन भलाई इसीमे थी। बढई कब तक उस सूअर की रखवाली करता। एक दिन वह उसको एक दूर के जगल मे जाकर छोड आया।

तच्छक सूअर उस जगल मे, अकेले इधर-उधर भटकने लगा। घूमते-घामते वह जगल के बीच मे पहुच गया। वहा एक स्थान पर बहुत-से सूअर रहते थे। तच्छक शरणार्थी की तरह उनके पास पहुचा। उसने उन दल मे सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। उसकी प्रार्थना सुनकर उन सूअरो ने कहा, "भाई! यहा रहने मे तुम्हारी भलाई नही है, इसलिए तुम कहीं और जाकर रहो।"

तच्छक ने पूछा, "क्यो, क्या बात है? मैं तो अपनी

ही नहीं, मुख्यतः आप सबकी भलाई चाहता हूं । यहां रहने से मुझे आप सबकी सेवा करने का सुअवसर मिलेगा । फिर आप मुझको क्यों दुतकारते है ?"

एक वृद्ध सूअर बोला, "बेटा, तुम्हारा कल्याण हो । हमने घृणा और द्वेष के कारण ऐसा नही कहा है। तुम तो हमारी जाति के रत्न जान पड़ते हो । हम सब तुम्हारे जीवन की सुरक्षा चाहते हैं, इसलिए हमने तुम्हे यहा से कही और जाकर रहने की सलाह दी है । इस स्थान पर हममे से किसीका भी जीवन सुरक्षित नही है । यहा पास ही में हमारा एक बलवान् वैरी रहता है । वह नित्य अच्छे-अच्छे सूअरो को चुनकर मार डालता है । तुम्हें तो वह कभी न छोड़ेगा इस-लिए जान का खतरा मोल मत लो और चुपचाप चले जाओ ।"

इसे सुनकर तन्छक ने वृद्ध सूअर से उस महावैरी का परिचय पूछा । वृद्ध सूअर बोला, "बेटा, वह एक दुष्ट सिंह है । उसकी दाढे बड़ी भयकर है । हम सब तो उसको देखते ही अधमरे हो जाते है ।"

तन्छक ने फिर पूछा, "अच्छा, यह बताओ, कि यहां एक ही सिंह है या और भी है ?"

वृद्ध ने कहा, "बस, एक ही है । लेकिन एक ही

वहुत है।"

तच्छक बोला, "तब आप लोग डटकर उसका सामना क्यो नही करते ? आप अपने को उससे निर्वल क्यो मानते हैं। आपके दात भी कम चोखे नही है। आप भी वल-पराक्रम दिखा सकते है। फिर मिलकर उस जाति-द्रोही पर प्रहार क्यो नही करते ? मैं अपने भाई-वन्धुओ की ऐसी दुर्दशा नही देख सकता ! मैं यही रहूगा और आप लोगो की मदद से उस शत्रु को निर्मूल करके ही छोड़ूगा। वताइए तो वह दुष्ट कहा रहता है ?"

वृद्ध सूअर ने एक पहाड की ओर इशारा करके कहा, "वहा, वहा, उसी पहाड की एक कन्दरा मे वह रहता है और वहा से नित्य प्रात काल दहाडता हुआ इधर आता है।"

तच्छक सूअर हठ करके वहा रुक गया। उसने सव सूअरो को एकत्र करके उन्हे शत्रु का मुकावला करने के लिए उत्साहित किया। सूअरो से वह वोला, "भाइयो ! डरने का काम नही है, अपने को तुच्छ न समझना, हम सव एक होकर वडे से वडे वैरी को परास्त कर सकते है। एकता मे वडी शक्ति होती है। तुम लोग मेरे कहने के अनुसार काम करो तो मैं कल ही उस अत्याचारी का सर्वनाश कर डालूगा।

बोलो एक स्वर से बोलो; तुम सब मेरे साथ लड़ाई के मैदान में चलने को तैयार हो ?"

सूअरो ने एकमत होकर कहा, "हम आपका साथ देंगे। आप हमारे सेना बने। हम आपके कहने से प्राण तक देंगे..."

इस प्रकार सूअर-समाज को सगठित करके तच्छक ने दूसरे दिन बड़े सवेरे ही छोटे-बडे सब सूअरो को एक मैदान मे इकट्ठा किया। फिर उसने अपनी उस सेना का व्यूह बनाया। बीच मे दुधमुहे बच्चे रखे गए। उनके चारो ओर उनकी माताए खड़ी की गई। उनके चारो ओर सूअरो के छोने, फिर छोटे दातो वाले सूअर रखे गए। उनके बाद बडे-बूढो का घेरा बनाया गया, फिर सबसे बाहर के घेरे में तेज दांतो वाले बलवान् सूअरो की टुकड़ियां खडी की गई।

इस तरह व्यूह की रचना करके तच्छक ने अपने लिए एक ऊंचा चबूतरा और उस चबूतरे के पीछे अपने लिए एक गड्ढा बनवाया। उस गड्ढे के पीछे एक दूसरा गहरा लम्बा गड्ढा भी खुदवा दिया।

युद्ध की सारी तैयारी करके सेनापति तच्छक अपने सरदारों का उत्साह बढ़ाता हुआ घूमने लगा। उसने बार-बार सबको यही सन्देश दिया, "भाइयो! भयभीत

न होना, मैदान से पीठ न दिखाना, साहस न छोडना हमारी जीत निश्चित है।

सूर्योदय होते ही सिह अपने नियम के अनुसार कलेवा करने चल पडा। उसे आते देखकर तच्छक अपने चबूतरे पर खडा हो गया और अपने साथियो की हिम्मत बढाने लगा। सिह सामने की चोटी पर आकर खडा हो गया। उसकी आखो के आगे एक नया दृश्य था। जो जीव रोज उसे देखते ही दुम दबाकर इधर-उधर भाग खडे होते थे, वही सामने अकडे थे। यह कम आश्चर्य की बात नही थी। सिह घूर-घूरकर उनकी ओर ताकने लगा। तच्छक ने अपने साथियो से कहा, "वह आख दिखाए तो तुम सब भी उसे आख दिखाओ वह जो करे, वही तुम भी करो आज किसी भी बात मे शत्रु से दबने की आवश्यकता नही है।"

सेनापति की आज्ञा से सभी सूअर आखे फाड-फाडकर सिह को घूरने लगे। इतने मे सिह ने ज़ोर से गर्जन किया। सुअरो ने भी मिलकर ऐसा घोर नाद किया कि सारा जगल काप उठा। उधर सिह उछलने के लिए पीछे दबका तो सूअर भी पैतरे बदलकर खडे हो गए। उनका रग-ढग देखकर सिह डर गया। उसने समझ लिया कि मामला कुछ टेढा है। सूअर शेर हो

गए हैं। उनका दब्बूपन मिट गया है और सब लड़ाई करने पर तुले हैं। उनके सेनापति को खड़े-खड़े ललकारते देखकर सिंह ने हमला करने का साहस नही किया। वह उलटे पांव लौट गया। उसी पर्वत पर एक मांसाहारी तपस्वी रहता था। वह उस सिंह का गुरु था। सिंह उसे रोज सवेरे ताज़ा मांस दे जाता था। उस दिन चेले को खाली हाथ आते देखकर गुरु बोला, "क्यों राजा बेटा! आज इस तरह मन मारे कैसे आए? गुरुजी के लिए कुछ नही लाए? तबीयत ठीक हो तो जाकर एक बढ़िया सूअर मार लाओ। मैंने अभी तक जलपान नही किया।"

सिंह उदास होकर बोला, "स्वामीजी, आज मैं सूअरों को मारने में असमर्थ हूं।"

तपस्वी ने चौंककर पूछा, "क्यों, क्या हुआ? यह तो तुम्हारे लिए बहुत मामूली काम है। इस तरह हिम्मत हारने की क्या बात है? पहले तो तुम बात की बात में उन्हें मार लेते थे?"

सिंह लम्बी सांस लेकर बोला, "पहले की बात और थी। पहले वे डर के मारे भागते थे, आज संगठित होकर युद्ध के लिए ललकारते हैं। पहले वे चूं तक नही करते थे, आज गर्व से गरज रहे हैं। पहले उनमें एकता

नही थी, लेकिन आज वे एक नेता की अध्यक्षता मे एकमत हैं। अब जमाना बदल गया है। मैं उनके सगठन को तोड नही सकता।"

तपस्वी के लिए यह बडे दुःख का समाचार था। उसने सिह को उत्साहित करते हुए कहा, "हिम्मत न हारो, वनराज! अपने बल-पराक्रम को याद करो। ससार के सारे सूअर-महासूअर भी तुम्हारे आगे नही टिक सकते! मेरे कहने से तुम निर्भय होकर जाओ और गरजते हुए उन तुच्छ प्राणियो पर टूट पडो। वे देखते-देखते हवा हो जाएगे। जाकर देखो तो सही! गुरु की आज्ञा मत टालो। जाओ, मै आशीर्वाद देता हू कि तुम विजयी होकर लौटोगे।"

तपस्वी के आग्रह से सिह फिर सूअरो के व्यूह की ओर लौट पडा। उसे देखते ही तच्छक ने सबको साव-धान कर दिया। सिह अपने प्रधान वैरी को देखते ही आग-बबूला हो गया। वह गरजता हुआ बडे वेग से उसके ऊपर झपटा। उसे आते देख तच्छक तुरन्त चबूतरे के पास वाले गड्ढे मे कूद पडा। सिह अपने वेग को सभाल नही पाया और दूसरे गड्ढे मे गिरकर लुढकता हुआ नीचे चला गया। उसका गड्ढे मे गिरना था कि तच्छक ने उछलकर अपने तेज दातो से उसका पेट फाड

डाला। सिंह को संभलने का मौका ही नहीं मिला। उसकी पूरी दुर्गति हो गई।

तच्छक ने उसे बाहर निकलवाया और उसकी बोटी-बोटी कटवाकर सबको बांट दी। सूअरों की यह बहुत बडी विजय थी। फिर भी वे प्रसन्न नही दिखाई पड़े। तच्छक ने उन्हे ऐसे शुभअवसर पर भी खिन्न देखकर उनसे उसका कारण पूछा तो वे बोले, "अभी क्या खुशी मनाएं ! जिसके कहने से यह सिंह हमारी हिंसा करता था, वह क्रूर-कुटिल तपस्वी तो अभी जीवित ही है। कल वह इसकी जगह कही से दस सिंह ढूंढ लाएगा तो हम कही के नही रहेगे ! अभी सकट निर्मूल नही हुआ।"

तच्छक ने बड़े उत्साह से कहा, "चलो, आज हम एक-एक शत्रु को मारकर ही छोडेगे !"

यह कहकर वह सूअरों के साथ उस तपस्वी के आश्रम की ओर चल पडा। उधर सिंह के न लौटने से तपस्वी चिन्तित होकर उसकी खोज-खबर लेने निकला था। दूर से सूअरों को गरजते-उछलते आते देखकर वह समझ गया कि वे सिंह को मारकर ही आ रहे हैं। वह भागकर एक गूलर के पेड़ पर चढ़ गया। सूअरों ने उसे चारो ओर से घेर लिया।

जाए तो कोई हानि न होगी। मेरी तो इच्छा है कि आप इन शिष्यो को भेज दें और स्वय यहा थोडे दिन और रुक जाए।"

केशव ने राजा की बात मान ली। सब शिष्यो को वापस भेजकर वे अकेले राजा के उद्यान मे रुक गए। वहां राजा ने उनके खाने-पीने और सोने का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध कर दिया। केशव को किसी भी बात की कमी नही थी, फिर भी शिष्यो के चले जाने के बाद वे बहुत दु खी रहने लगे। न उन्हे रात मे ठीक से नींद आती थी और न खाना ही पचता था। रह-रहकर उन्हें कल्पकुमार की याद आती थी और वे बेचैन हो जाते थे। अकेला कल्पकुमार उनकी जितनी सभाल कर लेता था, उतनी राजा के दस नौकर नही कर पाते थे। केशव को उससे जो सुख [illegible], वही अब दु ख

के कारण बन गए। उन्होने [illegible] जाने की

की, लेकिन राजा उन्हे छोड [illegible] हत

धीरे-धीरे केशव का [illegible] ने

उन्हें बढिया से बढिया भोजन [illegible] f

वे दुर्बल हो गए और अन्त [illegible]

से पीड़ित होकर शय्या पर पड [illegible]

[illegible] लिए एक नही, पाच

दिए, फिर भी केशव चंगे नहीं हुए। उनकी दशा बिगड़ती ही चली गई।

एक दिन वे राजा से बोले, "राजन्, तुम्हारी क्या इच्छा है; मैं मर जाऊं या स्वस्थ हो जाऊं!"

राजा ने हाथ जोडकर कहा, "देव,! मैं तो हृदय से आपके स्वास्थ्य की कामना करता हूं।"

केशव बोले, "महाराज! यदि तुम मुझे सचमुच स्वस्थ देखना चाहते हो तो शीघ्र हिमालय पहुचवा दो। मैं वहीं जाने पर स्वस्थ हो सकूंगा।"

राजा ने तुरन्त अपने नारद नामक मन्त्री के साथ उन्हें उनके आश्रम में भेज दिया। वहां कल्पकुमार को देखते ही केशव का मुरझाया हुआ मन हरा-भरा हो गया। वे अपनी व्यथा को भूल गए। कल्पकुमार ने पानी में चावल-जौ पकाकर गुरुजी को दिया। उसे उन्होंने बड़े चाव से खाया। उसी दिन उनका रोग शान्त हो गया और वे स्वस्थ होने लगे।

राजा ब्रह्मदत्त केशव के स्वास्थ्य के विषय में बहुत चिन्तित हो गए थे। इसलिए उन्होंने नारद को शीघ्र ही समाचार लाने के लिए उनके पास दुबारा भेजा। नारद सोचता था कि केशव शायद मर गए होंगे, लेकिन वहां देखा कि उनका तो कायाकल्प हो गया है।

जाए तो कोई हानि न होगी। मेरी तो इच्छा है कि आप इन शिष्यो को भेज दे और स्वय यहा थोडे दिन और रुक जाए।"

केशव ने राजा की बात मान ली। सब शिष्यो को वापस भेजकर वे अकेले राजा के उद्यान मे रुक गए। वहा राजा ने उनके खाने-पीने और सोने का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध कर दिया। केशव को किसी भी बात की कमी नही थी, फिर भी शिष्यो के चले जाने के बाद वे बहुत दु खी रहने लगे। न उन्हे रात मे ठीक से नीद आती थी और न खाना ही पचता था। रह-रहकर उन्हे कल्पकुमार की याद आती थी और वे बेचैन हो जाते थे। अकेला कल्पकुमार उनकी जितनी सभाल कर लेता था, उतनी राजा के दस नौकर नही कर पाते थे। केशव को उससे जो सुख मिले थे, वही अब दु ख के कारण बन गए। उन्होने कई बार जाने की इच्छा की, लेकिन राजा उन्हे छोडना ही नही चाहता था।

धीरे-धीरे केशव का स्वास्थ्य बिगडने लगा। उन्हे बढिया से बढिया भोजन दिया जाता था, फिर भी वे दुर्बल हो गए और अन्त मे भयकर अतिसार रोग मे पीडित होकर शय्या पर पड गए। राजा ने उनकी चिकित्सा के लिए एक नही, पाच-पाच नामी वैद्य लगा

दिए, फिर भी केशव चंगे नहीं हुए। उनकी दशा बिगड़ती ही चली गई।

एक दिन वे राजा से बोले, "राजन्, तुम्हारी क्या इच्छा है; मैं मर जाऊं या स्वस्थ हो जाऊं।"

राजा ने हाथ जोड़कर कहा, "देव, ! मैं तो हृदय से आपके स्वास्थ्य की कामना करता हूं।"

केशव बोले, "महाराज ! यदि तुम मुझे सचमुच स्वस्थ देखना चाहते हो तो शीघ्र हिमालय पहुंचवा दो। मैं वहीं जाने पर स्वस्थ हो सकूंगा।"

राजा ने तुरन्त अपने नारद नामक मन्त्री के साथ उन्हें उनके आश्रम में भेज दिया। वहां कल्पकुमार को देखते ही केशव का मुरझाया हुआ मन हरा-भरा हो गया। वे अपनी व्यथा को भूल गए। कल्पकुमार ने पानी में चावल-जौ पकाकर गुरुजी को दिया। उसे उन्होंने बड़े चाव से खाया। उसी दिन उनका रोग शान्त हो गया और वे स्वस्थ होने लगे।

राजा ब्रह्मदत्त केशव के स्वास्थ्य के विषय में बहुत चिन्तित हो गए थे। इसलिए उन्होंने नारद को शीघ्र ही समाचार लाने के लिए उनके पास दुबारा भेजा। नारद सोचता था कि केशव शायद मर गए होंगे, लेकिन वहां देखा कि उनका तो कायाकल्प हो गया है।

वे पूर्णरूप से स्वस्थ एवं बहुत ही प्रसन्न लगते थे। नारद को यह सब देखकर बडा ग्राश्चर्य हुग्रा । कुशल-प्रश्न के बाद उसने पूछा, "तपस्वीजी ! वहा पाच-पाच वैद्यो की चिकित्सा से भी ग्रापको कुछ लाभ नही हुग्रा, यहा ग्राते ही ग्राप इतनी जल्दी कैसे स्वस्थ हो गए ! यहा सुख के उतने साधन भी नही है, फिर भी वहा की ग्रपेक्षा यहा ग्राप ग्रधिक प्रसन्न दिखाई देते है। इसका क्या कारण है !

केशव बोले, मन्त्रीजी ! सुख-दु ख, स्वास्थ्य-रोग का मूल कारण मन है । यहा की प्रकृति मेरे मन के ग्रनुकूल है । यहा मुझे ग्रपने प्रिय शिष्य कल्पकुमार की मीठी-मीठी बाते नित्य सुनने को मिलती है । मेरा मन यहा लगता है, इसलिए मैं स्वस्थ ग्रौर प्रसन्न हो गया । वहा मन नही लगता था, क्योकि ये सब चीजे वहा दुर्लभ थी, इसलिए मैं उदास ग्रौर ग्रस्वस्थ रहता था।"

इसी बीच मे कल्पकुमार गुरुजी के लिए कुछ रूखी सूखी-चीजे पकाकर ले ग्राया। वे उसे बडे प्रेम से खाने लगे । नारद ने फिर पूछा, "महाराज, राजा के यहा का बढिया भोजन तो ग्रापको प्रिय नही लगता था, लेकिन इस रूखे-सूखे भोजन को खाने मे ग्रापको

परम आनन्द आ रहा है। इसका क्या रहस्य है ?"

तपस्वी केशव बोले, "मन्त्रीजी ! यह मेरे प्रिय शिष्य के हाथ का बनाया भोजन है, इसीलिए मुझे बहुत ही प्रिय लग रहा है। कैसा भी पदार्थ हो, जब वह प्रेम-विश्वास के साथ खाया-खिलाया जाता है तो वह बहुत ही मधुर हो जाता है। सच्चा रस तो विश्वास से उत्पन्न होता है। विश्वास के बिना मीठी से मीठी चीज़ भी मनुष्य को फीकी जान पड़ती है। मैं अपने इस शिष्य का बहुत विश्वास करता हूं, इसलिए उसकी हरएक चीज मेरे मन को बहुत ही प्रिय लगती है।"

नारद कृतकृत्य होकर लौट गया।

८

विजय का रहस्य

कलिग देश मे, आज से बहुत पहले, एक शूरवीर एव युद्धप्रेमी राजा राज्य करता था। उसके पास एक विशाल सेना थी। उसे लेकर वह चारो ओर सबको युद्ध के लिए ललकारता ही घूमता था। जिस किसी राजा के बल-वैभव की प्रशसा वह सुन पाता, उससे किसी न किसी बहाने जाकर भिड ही जाता और अत मे उसका मान मिटाकर ही रहता था। धीरे-धीरे सारी पृथ्वी पर उसका ऐसा आतक छा गया कि कोई उसके सामने सिर उठाने का साहस ही नही करता था। सबने उसको शूर-शिरोमणि मान लिया।

ऐसी दशा मे कलिगराज को ढूंढने पर भी कोई प्रतिद्वन्द्वी नही मिलता था। वह किससे लडता! जिससे भी लडने पहुचता, वह या तो इसके चरणो पर लोट जाता या मैदान छोडकर भाग खडा होता था। बिना लडे राजा का मन नहीं मानता था। एक दिन वह खिन्न होकर मन्त्रियो से बोला, "मन्त्रियो! मैं इस

हू बैठे-बैठे ऊब गया हूं। कोई लड़ने-भिडनेवाला
लता ही नही; और बिना लडे-भिड़े मुझसे रहा
हीं जाता। मैं जल्दी ही किसीसे युद्ध करना चाहता
। बताओ, मेरी यह लालसा कैसे पूरी होगी ?"

एक चतुर मन्त्री ने कहा, "महाराज, इसका एक ही उपाय है। आपकी कन्याएं अपने रूप और गुण के लिए सारे ससार मे विख्यात है। बडे-बडे राजा उनसे विवाह करने को आतुर है। आप राजकुमारियों को एक रथ मे बैठाकर उनके चारो ओर परदा डाल दे। उसके बाद सारथि को कह दीजिए कि उसे एक-एक करके सब राज्यों में ले जाए। रथ के आगे-आगे सिपाही लोग यह घोषणा करते चले कि जो अपने को सच्चा मर्द मानता हो, वह इन कन्याओं को इस शर्त पर अपने घर में रख सकता है कि उसे राजाधिराज कलिंगराज के साथ युद्ध करना पड़ेगा। इस उपाय से कोई न कोई बेवकूफ राजा लड़ाई के लिए फस ही जाएगा।"

राजा को यह तरकीब बहुत पसन्द आई। उसने अगले ही दिन अपनी कन्याओं को रथ मे बिठाकर दुनिया का चक्कर लगाने के लिए रवाना कर दिया। आगे-आगे सिपाही लोग, मन्त्री आदि मन्त्र का उच्चारण

करते हुए चले । वहुत-से राजाओ के लिए तो वह उच्चाटन का मन्त्र सिद्ध हुआ । कितने तो घर क्या नगर तक के द्वार वन्द करके वैठ गए । कोई उन कन्याओ को अपने घर या नगर मे वुलाने को तैयार नही था । उनके लिए कौन मुसीवत मोल ले ! कलिगराज से सभी घवराते थे ।

कन्या-रथ सारे जम्वूद्वीप का चक्कर लगाकर अस्सकराज्य की ओर चला । अस्सकराज को जैसे ही उसके उधर आने की सूचना मिली, उसने दूर से ही भेट उपहार भेजकर अपने नगर के द्वार वन्द करवा दिए । उसके वुद्धिशूर मन्त्री नन्दिसेन को यह वात वडी अपमानजनक लगी । वह अस्सकराज से वोला, "महाराज पौरुपहीन कहलाने का कलक न लीजिए । इससे तो पुरुपार्थ दिखाते हुए मर जाना ही अच्छा है । आप उन कुमारियो को आदरपूर्वक महल मे वुला लीजिए, आगे जो होगा देखा जाएगा । लोगो को मालूम तो हो जाएगा कि अभी दुनिया मे एक सच्चा मर्द है ।"

नन्दिसेन के वहुत कहने पर राजा ने नगर और महल के द्वार खुलवा दिए । रथ महल के अन्दर लाया गया । अस्सकराज ने राजकुमारियो को महल के भीतर भिजवाकर कलिगराज को उसकी सूचना भेज दी ।

कलिगराज युद्ध के लिए छटपटा ही रहा था। उसे मनचाहा मौका मिल गया। वह अपनी चतुरगिणी सेना के साथ अस्सकराज्य का विध्वस करने चल पडा।

जब उसकी सेना ढोल पीटती हुई इस राज्य की सीमा के पास पहुची तो नन्दिसेन ने अपने दूत द्वारा कलिगराज के पास यह प्रस्ताव भेजा कि दोनो दलो को अपनी-अपनी सीमा मे रहकर बीच के मैदान मे युद्ध करना चाहिए। कलिगराज ने इसे मानकर वही अपनी सेना का पडाव डाल दिया। दोनो ओर से युद्ध की तैयारी होने लगी। उसकी तिथि भी निश्चित हो गई।

युद्धभूमि के पास ही एक तपस्वी महात्मा की कुटी थी। एक दिन कलिगराज वेश बदलकर महात्माजी से मिला। उसने उनसे युद्ध के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी करने की प्रार्थना की।

महात्माजी उस समय इस सम्बन्ध मे कुछ नही बता सके। उन्होने कलिगराज को दूसरे दिन आने को कहा। वह चला गया। रात मे महात्मा ने इन्द्र को बुलाकर पूछा, "देव, भावी युद्ध मे किसकी विजय होगी और जीतने तथा हारनेवाले की ओर क्या-क्या लक्षण प्रकट होगे?"

इन्द्र बोले, "युद्ध मे कलिंगराज की जीत होगी, क्योंकि इस समय देवतागण उसीके पक्ष में है और अस्सकराज हार जाएगा। युद्ध में विजयी का सहायक देवता सफेद रंग के बैल के रूप में दिखाई देगा और दूसरी ओर एक महाअशुभ काला बैल प्रकट होगा। ये लक्षण केवल उन दोनो राजाओ को ही दिखाई पड़ेंगे।"

इन्द्र भावी युद्ध का परिणाम बताकर चले गए। दूसरे दिन कलिंगराज गुप्तवेश में अपने प्रश्न का उत्तर पूछने फिर आया। महात्माजी ने सहज भाव से कहा, "इस युद्ध मे कलिंगराज की विजय होगी और अस्सक-राज की पराजय।"

उनके इतना कहते ही कलिंगराज हर्ष से उछल पड़ा। वह बिना और कुछ पूछे ही वहा से लौट आया। अपने डेरे पर पहुंचते ही उसने इस भविष्यवाणी का प्रचार करना शुरू कर दिया। होते-होते यह बात अस्सकराज के कानों तक पहुंची। वह पहले से ही डरा हुआ था, इसको सुनकर तो बिल्कुल अधमरा ही हो गया। नन्दिसेन ने ऐसी भविष्यवाणियों के विरुद्ध बहुत कुछ कहा, लेकिन अस्सकराज पर प्रभाव नहीं पड़ा।

कलिंगराज द्वारा फैलाई हुई बात की जांच करने

के लिए रात मे नन्दिसेन स्वय उस तपस्वी महात्माजी के पास गया। उसके पूछने पर भी महात्माजी ने वही बात ज्यो की त्यो कह दी। तव मन्त्री ने फिर पूछा, महाराज, युद्ध मे जीतने और हारनेवाले को ओर क्रमश क्या-क्या शुभ-अशुभ लक्षण दिखाई देंगे ?"

महात्माजी बोले, "अस्सकराज को दूसरी ओर सफेद बैल दिखाई देगा। वह वास्तव मे कलिगराज का रक्षक देवता होगा और कलिगराज दूसरी ओर एक काला बैल देखेगा जो वास्तव मे अस्सकराज का काल होगा।"

नन्दिसेन वहा से लौट आया। इस भविष्यवाणी से भी वह निराश नही हुआ। उसने एक हजार चुने हुए सैनिको को अपने पास बुलाया। उन्हे एक पहाड के ऊपर ले जाकर उसने पूछा, "सत्य-सत्य कहो, तुम लोग अपने राजा के लिए अपने-अपने प्राण न्योछावर कर सकोगे ?"

सबने एक स्वर से इसके लिए अपना दृढ निश्चय प्रकट किया। तव नन्दिसेन ने कहा, "अच्छा, तुम लोग राजा के कल्याण के लिए इस पहाड से अभी कूदकर जान दे दो।" सब के सब ऊपर से कूदने के लिए सहर्ष आगे बढे। नन्दिसेन ने उन्हे रोककर कहा, "ठीक है,

अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम लोग मौका पड़ने पर आत्मबलिदान करने में नही पिछड़ोगे। तुम लोग इसी भाव से, प्राण का मोह त्यागकर, युद्ध करना।"

निश्चित तिथि पर युद्ध आरम्भ हो गया। कलिंग-राज भविष्यवाणी पर पूरा विश्वास करके पहले से ही अपनी जीत मान बैठा था, इसलिए उसने विजय के लिए विशेष उद्योग नही किया। अस्सकराज अपने बचाव के लिए पूरी शक्ति से युद्ध कर रहा था। जब-जब वह ढीला पड़ता, पीछे से नन्दिसेन उसे सचेत कर देता। बहुत प्रयत्न करने पर भी अस्सकराज शत्रुओं को पीछे नही हटा पाया। उसकी हिम्मत टूटने लगी। उस समय नन्दिसेन ने उससे पूछा, "महाराज' आपको उधर कोई जानवर दिखाई पड़ता है ? "राजा ने कहा, "हां, उस सेना में एक श्वेत रंग का विचित्र बैल दिखाई देता है।"

नन्दिसेन ने तत्काल अपने एक हजार विश्वासी सैनिकों को आगे करके कहा, "महाराज, इन्हें लेकर आप पहले उस बैल को मार डालिए। उसीके कारण कलिंगराज अभी तक विजयी बना हुआ है। उसे मार-कर तब शत्रु से निपटिए।"

अस्सकराज चुने हुए योद्धाओं को लेकर मारता-काटता शत्रु-सेना के बीच में पहुंच गया। शत्रुओं के

बहुत रोकने से भी उसके निर्भीक सैनिक नही रुके। वहां पहुचकर राजा ने बैल को तलवार से मार गिराया। उसके मरते ही कलिंगराज का दैवी बल नष्ट हो गया। अस्सकराज ने पूरे उत्साह से उसकी सेना को गाजर-मूली की तरह काटना शुरू कर दिया। शत्रु लोग घबराकर मैदान से भागने लगे। कलिंगराज का विजयस्वप्न मिथ्या हो गया। वह युद्ध से प्राण बचा-कर भाग खडा हुआ। रास्ते मे महात्मा के पास से गुजरते हुए उसने पुकारकर कहा, "अरे धूर्त! मैने तेरी भविष्यवाणी पर विश्वास करके आज बडा धोखा खाया। मै उसपर विश्वास न करके पहले से ही मन लगाकर युद्ध करता तो इस समय मेरी ऐसी दुर्गति न होती।"

यह कहता हुआ वह अपनी राजधानी की ओर भाग गया। महात्मा को इन्द्र की भविष्यवाणी असत्य होते देखकर बडा आश्चर्य हुआ। रात मे उन्होने इन्द्र का दुबारा आह्वान करके कहा, "देव, आपने तो कहा था कि देवता कलिंगराज के पक्ष मे हैं, इसलिए वही विजयी होगा, लेकिन यहा तो उल्टा ही हुआ! अस्सक-राज क्यों और कैसे जीत गया?"

इन्द्र ने कहा, "तपस्वी! देवता तो पुरुषार्थी की ही सहायता करते हैं। इस युद्ध मे अस्सकराज ने जैसा

संयम, धैर्य, साहस, उत्साह और पुरुषार्थ-पराक्रम दिखाया, उससे देवता उसके अनुकूल हो गए। जिस समय मैंने भविष्यवाणी की थी, उस समय मुझे विश्वास नहीं था कि वह युद्ध में ऐसा पौरुष दिखाएगा। वास्तव मे उसे अपने गुणो के बल से आज आश्चर्यजनक सफलता मिली है। देवता लोग आरंभ में उसकी विजय नही चाहते थे; लेकिन बाद में उसका पौरुष-पराक्रम देखकर वे मुग्ध हो गए। उन्होंने ऐसे पुरुष का अनिष्ट करने का विचार त्याग दिया और उसका उद्योग सफल हो गया।"

इन्द्र यह कहकर चले गए। अस्सकराज विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ महल में आया। नन्दिसेन के कहने से उसने दूसरे दिन कलिंगराज को यह सन्देश भेजा कि मैं तुम्हारी कन्याओ से विवाह कर रहा हूं, उसके लिए शीघ्र सम्मानपूर्वक कन्यादान भेजो, अन्यथा मैं सेनासहित उसे लेने स्वयं आऊंगा।

कलिंगराज की शक्ति छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। अब उसमे अस्सकराज की किसी बात को ठुकराने का साहस नहीं था। अस्सकराज को सन्तुष्ट करने के लिए, उसे दहेज के रूप में काफी धन देना पड़ा। भविष्य में उसने फिर कभी किसीसे झगड़ा मोल लेने का दुस्साहस नहीं किया।

९

संगति का प्रभाव

बहुत दिनो की बात है, एक पेड़ पर एक ही मां की कोख से दो तोते पैदा हुए। दोनो साथ-साथ एक ही घोसले मे पलते थे। एक दिन ऐसा भयकर तूफान आया कि दोनो बच्चे कही के कही जा पडे। एक पहाड के ऊपर एक चोरो के गाव मे जा पहुचा और दूसरा आधी की लपेट मे पहाड के नीचे आ रहा। वहां ऋषियो का एक बहुत बडा आश्रम था। इस तरह दोनो भाई एक-दूसरे से बिछुड गए और अलग-अलग जगहो मे रहने लगे।

एक दिन पाचाल देश का राजा रथ पर चढकर उसी पर्वत प्रदेश मे शिकार खेलने आया। एक हिरन का पीछा करते-करते वह उन चोरो के गाव मे जा पहुचा। वह बहुत थक गया था, इसलिए सुस्ताने के लिए वही एक बावडी के किनारे रुक गया। सारथि ने ज़मीन पर बिछौना बिछा दिया। राजा उसीपर आखे मूंदकर लेट गया। वहा उस समय गाव का कोई

आदमी नही था। कुछ दूरी पर एक पेड के नीचे कोई आदमी बैठा था। उसी पेड़ पर एक तोता आकर बैठ गया। तोते ने राजा को सोते देखकर उस आदमी से कहा, "क्या देखते हो! मालदार आदमी है! अच्छा मौका है! मारकर इसके मुकुट, रत्न, हार आदि छीन लो! लाश को पत्ते से ढक देना, किसी को पता नही चलेगा।"

वह आदमी राजा को पहचानता था, इसलिए डरकर बोला, "चुप, चुप, यह मामूली आदमी नही, राजा है। इसके पास जाना तो आग से खेलना है।"

तोता फिर बोला, "अच्छा शिकार हाथ आया है, चूको मत, जाने न पाए..."

सारथि तो सो गया था, लेकिन राजा लेटे-लेटे तोते की बात सुन रहा था। उसने तुरन्त सारथि को जगाकर कहा, "जल्दी रथ तैयार करो। यह स्थान बडा भयानक जान पडता है, मुझे तो इस मायावी पक्षी को देखकर डर लगता है—यह आदमी की बोली में बड़ी अशुभ बातें कह रहा है।"

सारथि ने तुरन्त रथ तैयार कर दिया। राजा उसपर बैठकर चलने लगा तो तोता पीछे से चिल्लाकर बोला, "अरे सब लोग कहां हो! दौड़ो, दौड़ो! तीर-

१०

शत्रु का क्या भरोसा

किसी पर्वत की कन्दरा मे वहुत-सी भेडे रहती थी। एक दिन उनपर एक सियार की आख पड गई। वह अपनी सियारन के साथ पास के ही वन मे रहता था। भेडो को देखकर उसके मुह मे पानी भर आया। उस दिन से वह कन्दरा के आसपास चक्कर लगाने लगा। रोज उसके हाथ एक न एक भेड लग ही जाती थी। वह उसे मारकर सियारिन के साथ आनन्द से खाता था। थोडे ही दिनो मे सियार-सियारिन भेडो का मास खाकर खूब मोटे हो गए।

इधर भेडो की सख्या दिन-प्रतिदिन कम होने लगी। मोटी-ताज़ी भेडो मे केवल मेलमाता नाम की एक भेड बच रही। सियार वहुत दिनो से उसकी ताक मे था, लेकिन वह किसी तरह भी उसके पंजे मे न आती थी। एक दिन सियार ने सियारन से कहा, "देखती हो, यह मेलमाता कितनी चतुर है! यह आसानी से पकड मे न आएगी। अब तुम एक काम करो; इसके

पास अकेली जाकर मेल-मिलाप बढ़ाओ। थोड़े दिनों में तुम्हारी-उसकी खूब बनने लगेगी। बस, उसी मौके पर काम बनेगा। मैं तो यहां नकली मुर्दा बनकर लेट जाऊंगा और तुम विधवा का ढोंग रचकर हाहाकार करती हुई उसके पास जाना और उसके पैरों पर सिर पटक-पटककर कहना, 'हाय बड़ी बहिन! मेरी दुनिया उजड़ गई। मेरा भाग्य फूट गया। मेरे स्वामी मुझे अकेला छोड़कर चल बसे। अब तुम्हारे सिवा इस अभागिनी का कोई सहारा नहीं है। बहिनजी! उनकी लाश पड़ी हुई है। चलकर उसका दाह-संस्कार करवा दो। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगी…।' इस तरह उसे बहकाकर मेरे पास ले आना। बस, पास आते ही मैं उछलकर उसकी गर्दन पकड़ लूंगा।"

सियारिन ने ऐसा ही किया। दूसरे दिन से वह शेरमाता से मेल बढ़ाने में लग गई। मौके-बेमौके वह उसके पास पहुंच जाती और घंटों प्रेम से बातें करती। धीरे-धीरे दोनों में काफी मेल-जोल हो गया। तब एक दिन सियारिन ने सियार का सिखाया हुआ विधवा का ढोंग रचा। पति के मरने का हल्ला मचाकर वह शेरमाता के आगे रोती-धोती पहुंची और उससे अपने सियार चलने का आग्रह करने लगी। बहुत कहने-सुनने

से मेलमाता को जाना ही पडा। उसने दूर से सियार को ज़मीन पर पडे देखा। वह मुर्दे जैसा ही लगता था, फिर भी चतुर मेलमाता ने उसका विश्वास करना ठीक न समझा। वह वही रुककर सियारिन से बोली, "वहिन, क्षमा करना; तुम्हारे पति ने मेरे वशवालो को जिस तरह से मारा है, उसे सोचकर मुझे उनका विश्वास नही होता। मैं उनके पास न जाऊगी।"

सियारिन रोती हुई बोली, "अरी मेरी बडी वहिन! क्या कहती हो! भला मरा हुआ प्राणी किसीको मार सकता है! अब निश्चिन्त रहो, चलो, सखी चलो। उनके शरीर को अपनी आख से देख लो तो वे तर जाएगे।"

मेलमाता वोली, "सखी! मुझे तो उनकी मरी शक्ल से डर लगता है। तुम आगे-आगे चलो तो मैं चल सकती हू।" सियारिन आगे वढी। मेलमाता साव-धानी से उसके पीछे धीरे-धीरे चली। पैरो की आवाज़ सुनकर पाखण्डी सियार ने धीरे से गर्दन उठाई और आखे खोलकर उस ओर देखा। मेलमाता इस खेल को तुरन्त समझ गई और पीछे से भाग निकली। सियारिन ने दौडकर उसे रोकना चाहा, पर वह यह कहती हुई चली गई, "ऐसे मित्र से दूर रहने मे ही

कल्याण है !"

हाथ आया शिकार सियार की जल्दबाजी के कारण जाता रहा। इसके लिए सियारिन ने सियार को बहुत बुरा-भला कहा। सियार अपनी बेवकूफी पर पछताने लगा। अन्त में सियारिन ने कहा, "जो हुआ सो हुआ; मैं एक बार फिर उसे यहा तक लाऊगी, दुबारा ऐसा लडकपन मत करना।"

सियार ने कहा, "नही, नही, अब ऐसी गलती न होगी। मैं बिलकुल मुर्दा बन जाऊगा, तुम एक बार फिर अपना जादू चलाओ, फिर मेरी करामात देखना।"

सियारिन फिर मेलमाता के पास गई और मुह बनाकर बोली, "बहनजी, आप तो साक्षात् देवी है। हे भगवती की सगी बहन! मेरे घर में आपके चरण पडते ही मेरे नाथ जी उठे। हमारा खोया हुआ सौभाग्य वापस मिल गया! कैसी अद्भुत महिमा है आपके चरणों की! आपने मेरे पतिदेव को नया जीवन दे दिया। अब वे पुन. सचेत हो गए हैं, लेकिन निर्बलता के कारण अभी चल-फिर नही सकते और उसी तरह लेटे है। आप एक बार चली चले तो उन्हे बडा साहस मिलेगा और वे शीघ्र ही चगे हो जाएंगे। पतिदेव की आज्ञा से आज मैं अपने घर पर आपको प्रीतिभोज भी

देना चाहती हू । कृपा करके अवश्य चलिए ।"

मेलमाता एक ही बार मे बहुत कुछ सीख गई थी । वह सियारिन के चकमे मे दुबारा नही आई और उसीकी तरह की बाते बनाकर बोली, "बहन ! मुझे यह शुभ समाचार सुनकर बडी प्रसन्नता हुई है । भगवान् तुम्हे सदा सौभाग्यवती रखे । मैं अवश्य आऊगी । लेकिन मेरे साथ कई और भी सगी-साथी रहेगे । सो, सबके भोजन का पूरा प्रबन्ध रखना ।"

सियारिन ने पूछा, "बहनजी ! वे साथी कौन है, कितने है ?"

मेलमाता ने चार कुत्तो के नाम बताकर कहा, ये चार तो सरदार हैं, इनमे से प्रत्येक सरदार के साथ पाच-पाच सौ कुत्ते होगे । इस प्रकार दो हज़ार साथियो को लेकर मैं शाम को आऊंगी । देखना कोई त्रुटि न हो, नही तो सब बडा उत्पात करेगे ।"

इसे सुनते ही सियारिन के देवता कूच कर गए । उसने सोचा कि इस बला को तो किसी तरह दूर से ही टालना अच्छा है । वह फिर बात बनाकर बोली, "बडी बहन ! मैं सोचती हू कि तुम यहा से चलोगी तो घर सूना हो जाएगा । इसलिए अभी आज कष्ट न करो । मैं तो आती-जाती रहूगी ही । कोई बात होगी

तो बताऊंगी, तब चलना। अभी तो तुम्हारी कृपा से वे जी उठे हैं और अच्छे हो रहे हैं। तुम यही उनके स्वास्थ्य के लिए शुभकामना करो। यही बहुत है।

यह कहकर सियारिन भागती हुई घर आई। वहां सियार सांस रोके पड़ा था। सियारिन ने उसे धक्के देकर कहा, "सुनते हो जी! सेलमाता ने कुत्तों की पूरी सेना बटोर ली है। पूरे दो हजार कुत्तों को लेकर वह किसी भी समय धावा बोल देगी। अब तो वह घर भी देख गई है।"

सियार चीखकर उठ बैठा और बोला, "हाय बाप! तब क्या होगा?"

सियारिन ने कहा, "अब जल्दी से जल्दी यहां से कूच करो। इस मांद को ही नहीं, इस जंगल को भी छोड़ देने में ही भलाई है। वह बिना बदला लिए न छोड़ेगी।"

दोनों उसी क्षण वहां से दुम दबाकर दूर भाग गए और फिर लौटकर उधर नहीं आए।

११

खड्डु खनै जो और को....

राजा ब्रह्मदत्त के पुरोहित का शरीर बिलकुल पीले रग का था। उसके दात मुह से बाहर निकले रहते थे। उसी रूप-रग का एक दूसरा ब्राह्मण भी उसी नगरी मे रहता था। पुरोहित उससे बहुत जलता था। और किसी पुराने वैर का बदला लेने की ताक मे था।

एक दिन पुरोहित अनुकूल अवसर देखकर राजा से बोला, "धर्मावतार! इस नगर का दक्षिण का द्वार बड़ा ही अमगलजनक है। उसे उखड़वाकर शुभ मुहूर्त मे शास्त्रीय ढग से दूसरा द्वार लगवाना चाहिए—नही तो नही तो...महाराज! क्या कहू ?"

राजा ने कहा "पण्डितजी, इसके लिए किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता पड़ेगी और क्या-क्या करना होगा ?"

पुरोहित बोला, "महाराज! पुराने दरवाजे को निकलवाकर, पहले वहा भगवती को बलि चढानी होगी फिर शुभ नक्षत्र मे पवित्र लकड़ी का बना हुआ नया

दरवाजा लगाना चाहिए। बस, इससे अधिक और कुछ नहीं करना है।"

राजा ने पुरोहित के प्रस्ताव को मानकर वह काम उसीके हाथों में सौंप दिया। पुरोहित अपने एक चतुर शिष्य के साथ काम में जुट गया। उसने मजदूरों से पुराने दरवाजे को तोड़वा डाला और बढ़इयों से एक बढ़िया दरवाजा भी बनवा लिया। उसके बाद वह राजा के पास आकर बोला, "अन्नदाता! सब कुछ तैयार है। कल ही दरवाजा बैठाने का मुहूर्त है, सो बलिदान की व्यवस्था होनी चाहिए।"

राजा ने पूछा, "उसके लिए आपको क्या-क्या चाहिए?"

पुरोहित को कुछ सोचना नहीं पड़ा। वह सब कुछ बहुत पहले ही सोच चुका था। उसने कहा, "राजन्, शास्त्र के अनुसार बलि के लिए पीतवर्ण का एक ऐसा ब्राह्मण होना चाहिए, जिसके दांत बाहर निकले हों। भगवती ऐसे अवसर पर ऐसे ही प्राणी के मांस-रक्त से सन्तुष्ट होती है। उसके शरीर को नींव के गड्ढे में गाड़कर उसीके ऊपर दरवाजा लगाना शुभ है। इस द्वार से फिर कोई शत्रु इस नगरी में प्रवेश नहीं कर सकेगा।"

राजा ने इसे भी मान लिया। पुरोहित को ऐसे आदमी की खोज करने का आदेश मिल गया। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने यह सब कुचक्र अपने उसी पुराने वैरी को मरवाने के लिए किया था।

मन ही मन 'अब मार लिया, अब मार लिया' कहता हुआ वह शाम को घर लौटा। घर आकर वह खुशी के मारे नाचने लगा। उसे अकारण इतना प्रसन्न देखकर उसकी स्त्री ने पूछा, "क्या बात है ? आज कहा का राज्य जीतकर लौटे हो ?"

पुरोहित हर्ष से विह्वल था। वह उसे प्रकट किए बिना न रह सका और धीरे से बोला, "कल देखना, क्या होता है !"

स्त्री ने पूछा, "क्या होगा, बताओ तो सही ! तुम्हारा राजतिलक होगा, कि नया विवाह तो करने नही जा रहे हो ?"

पुरोहित बोला, "बहुत कुछ होगा। सुन, वह जो बडे-बडे दातोवाला पीले रग का ब्राह्मण है ! जानती हो न !—अरे वही, जिसको मैं बहुत दिनो से फसाने की ताक मे था ! कल बेमौत मारा जाएगा। कल मैं उसे मौत के गड्ढे मे धकेलकर छोडूगा।"

स्त्री ने पूछा, "यह क्या ? क्यो उसने कोई भयकर

अपराध किया है ?"

पुरोहित बोला, "उसे राजा की ओर से नहीं, मेरी ओर से मौत की सजा मिलेगी।"

इसके बाद पुरोहित ने भेद की बात स्त्री को बता दी। स्त्री उसे सुनकर खिन्न हो गई। निजी द्वेष के कारण किसी निरपराध व्यक्ति की हत्या करवाना उसे प्रिय नहीं लगा। पुरोहित तो भगवान् से जल्दी सवेरा करने की प्रार्थना करके सो गया, लेकिन स्त्री को नींद नहीं आई। उसने रातोरात उस पीले रंग वाले ब्राह्मण को यह गुप्त संदेश भेज दिया कि यदि प्राण बचाना चाहते हो तो अपने जैसे अन्य लोगों को भी लेकर सवेरा होने से पहले ही राजधानी से दूर भाग जाओ!

इस संदेश को पाते ही उस ब्राह्मण ने दौड़कर सभी बड़े दांतों वाले पीले ब्राह्मणों को भावी विपत्ति की सूचना दे दी। फल यह हुआ कि रात ही में वहां से इस तरह के ब्राह्मण भाग गए।

पुरोहित को इसका पता नहीं चला। वह बड़े सवेरे उठने क्या सोगुने हर्ष-उत्साह के साथ राजा के पास पहुंचा और अनेक आशीर्वाद देकर बोला, "कृपानिधि! बहुत पता लगाने पर बलि के योग्य एक बहुत अच्छा ब्राह्मण मिला है। वह अमुक स्थान पर रहता है। कृपा

करके उसीको पकडवाकर मगाए। शुभ मुहूर्त आ गया है। अधिक विलम्ब न होना चाहिए।"

राजा ने उसे पकडने के लिए सिपाही भेज दिए। लेकिन वह कहा से मिलता! चिडिया हाथ से निकल गई थी। सिपाहियो ने लौटकर राजा से कहा, "सरकार! वह आदमी तो कही भाग गया। नगर-भर मे खोजने पर भी नही मिला।" अधिक विलम्ब होने से पुरोहित का वताया हुआ शुभ मुहूर्त टल जाता। इसलिए सव वडी परेशानी मे पड गए। राजा ने उससे मिलता-जुलता कोई दूसरा आदमी ढूढने के लिए सिपाहियो को चारो ओर भेजा, लेकिन वैसा एक भी आदमी नही मिला।

इतना सव करने के वाद यदि वलि न दी जाती तो भगवती रुष्ट हो जाती। इस विचार से राजा इस धार्मिक कार्य को टालना नही चाहता था। पुरोहित का निशाना चूक गया था। इसलिए वह तो किंकर्तव्य-विमूढ होकर खडा का खडा ही रहा। राजा अपने मन्त्रियो से राय लेने लगा। एक मन्त्री ने अपनी राय देते हुए कहा, "महाराज! वलि के लिए जिस रग-ढग के आदमी की आवश्यकता है, वैसे तो वस पुरोहितजी ही इस समय मिल सकते है। यह शुभ कार्य इन्हीकी

बलि से सम्पन्न हो सकता है।"

राजा बोला, "नहीं, नहीं, यह कैसे होगा ? पुरोहितजी न रहेंगे तो सारा कर्मकाण्ड कौन कराएगा ?"

मन्त्री ने कहा, "महाराज, चाहे जिस तरह भी हो, दरवाजा तो आज अच्छी घड़ी में लग ही जाना चाहिए। पुरोहितजी बता चुके हैं कि यदि यह आज न लगा तो फिर साल-भर तक वहां दरवाजा बैठाने की दूसरी साइत नहीं है। इस हालत में इधर से शत्रु लोग किसी समय भी नगर में घुसकर उपद्रव कर सकते हैं। सो देव, इस समय पुरोहित के जीवन की चिन्ता न करके राजधानी की रक्षा की चिन्ता करें। पुरोहित का काम तो उनका शिष्य कर देगा। वह उनसे कम ज्ञानी नहीं है। अब उसीको पुरोहित बनाकर इन पुरोहितजी की बलि चढ़वा दें। ऐसे मंगल कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए।"

राजा ने उस शिष्य को बुलाकर तुरन्त अपना पुरोहित नियुक्त कर दिया। पुराना पुरोहित बलिदान का बकरा बन गया। उसका तो वही हाल हुआ—

'गड्ढ खनै जो और को ताको कूप तैयार।'

राजा ने अपने नये पुरोहित को शीघ्र सारा काम सुयोग्य रीति से आरम्भ करने की आज्ञा दी। पुराने

पुरोहित को रस्सियो से पशु की तरह बाधकर उसके सामने खडा कर दिया गया।

नये पुरोहित ने बलिदान के लिए एक गड्ढा खोदवाया। उसके चारो ओर कनात तनवा दी गई। भीतर बस गुरु-चेला ही रह गए। वहा गुरु बोला, "भैया चेलाराम ! हमारा हाल तो मेढक जैसा हुआ, जो स्वय बोल-बोलकर साप को अपनी ओर बुला लेता है। मैं इस भेद की बात को पेट मे न रख सका। उसी-का फल भुगतने जा रहा हू। मैंने अपना गुप्त रहस्य रात मे स्त्री को बता दिया था, उसीने भडाफोड किया है ! अब क्या होगा ? शिष्य ! किसी तरह प्राण बचाओ ! यही तुम्हारी गुरुदक्षिणा होगी ! मैं अपनी लगाई आग मे जलने जा रहा हू।"

शिष्य ने उसको चुप कराते हुए कहा, "गुरुदेव ! आपकी जीभ तो आपके वश मे रहती ही नही ! बहुत बोलनेवाले इसी तरह अपने पर मुफ्त की मुसीबत मोल ले लेते है। अब तो चुप रहिए। मुझसे जो हो सकेगा, मैं करूगा।"

गुरु को वही खडा करके शिष्य बाहर आया और राजा से बोला, "राजन्, मुहूर्त तो करीब-करीब बीत चुका है। बलिदान चढाते-चढाते दरवाजा बैठाने की

साइत टल जाएगी। इसलिए आज्ञा हो तो वह कार्य दिन बीतने के बाद शुरू किया जाए। आज सूर्यास्त के बाद ऐसा ही दूसरा शुभ योग है। इसलिए अभी जल्दी क्यों की जाए!"

राजा ने कहा, "ठीक है, शाम को हो सके तो शाम को ही करो।"

शाम को नये पुरोहित ने चुपचाप एक गट्ठर में एक भेड़ा बंधवाकर कनात के भीतर मंगवाया। किसी-को इसका पता नहीं लगने पाया। इसके बाद उसने गुप्त रीति से गुरु को कनात के घेरे से बाहर निकाल दिया। उसकी जगह भेड़े को मारकर नये पुरोहित ने पूजा में सबके सामने उसीका मांस चढ़ा दिया। राजा तथा अन्य लोगों ने यही समझा कि पुराने पुरोहितजी को मारकर गड्ढे में फेंक दिया गया है, और उन्हींके नाम से भगवती की पूजा हो रही है। इस तरह वह मंगल कृत्य बिना नर-बलि के पूरा हो गया।

शिष्य की कृपा से जान बचाकर षड्यन्त्री पुरोहित कहां गया, किधर गया—इसका कुछ पता ही नहीं चला। वह सदा-सर्वदा के लिए उस राज्य से चला ही गया, फिर लौटकर नहीं आया।

१२

आपसी झगड़े का परिणाम

एक समय की बात है, किसी जगल मे एक नदी के किनारे एक सियार अपनी सियारिन के साथ वडे सुख से रहता था। वह रोज जगल से सियारिन की पसन्द की चीजे-ढूढकर ले आता और उसे हर तरह से प्रसन्न रखने की चेष्टा मे लगा रहता था।

एक दिन सियारिन को रोहित मछली खाने का शौक हुआ। सियार उसकी इच्छा पूरी करने के लिए नदी के किनारे पहुचा। वहा दो ऊदविलाव पहले से ही मछली पकडने मे लगे थे। सियार चुपचाप एक ओर खडा हो गया। उसे किसीने नही देखा, लेकिन वह सबको देख रहा था।

थोडी देर मे जल के भीतर एक वडी मछली दिखाई पडी। एक ऊदविलाव ने पानी मे कूदकर उसकी पूछ पकड ली। मछली भारी ही नही, वलवान् भी थी। वह ऊदविलाव को ही अपनी ओर खीचने लगी। उस वेचारे ने मुसीवत मे पडकर सहायता के लिए दूसरे

ऊदबिलाव को पुकारा। दोनों ने मिलकर मछली को काबू में कर लिया।

उसे वे खींचकर पानी से बाहर ले आए। अब बंटवारे का प्रश्न सामने आया। लाभ से लोभ बढ़ता ही है। प्रत्येक ऊदबिलाव उस मछली में अधिक से अधिक हिस्सा मांगने लगा। दोनों में इसीको लेकर वाद-विवाद छिड़ गया। बहुत देर तक दोनों लड़ते-झगड़ते रहे। अन्त में, उस मामले को तय करने के लिए किसी तीसरे को बीच में डालना आवश्यक हो गया। दोनों इस बात पर राजी हो गए कि कोई तीसरा प्राणी जो फैसला कर देगा, वह मान्य होगा।

ठीक उसी मौके पर सियार मन्द-मन्द गति से उनके सामने आया और बोला, "भाइयो क्यों, लड़ते हो, सुलह से क्यों नहीं रहते ?"

ऊदबिलाव बोला, "सुलह से कैसे रहें साहब ! ये महाशय मेरा हक दबाना चाहते हैं।"

सियार ने दुःख प्रकट करते हुए कहा, "यह तो बुरी बात है।"

इसपर दूसरा ऊदबिलाव बोला, "अरे साहब ! ये सरासर झूठ बोलते हैं। मुझे ये जायज हिस्सा भी नहीं देना चाहते हैं। इस पूंजी पर मेरा भी दावा है।

मैं मदद न करता तो यह भला इनके हाथ आती ! मैं न होता तो इसके पीछे इनकी जान ही चली जाती। अब ये सब कुछ खुद हथियाना चाहते हैं ।"

सियार ने फिर मुह बनाकर कहा, "ऐसा नही होना चाहिए । कोई किसीके साथ अन्याय क्यो करे ! हरएक को उसका हक मिलना ही चाहिए ।"

दोनो ऊदबिलावो पर उसकी बातो का ऐसा असर पडा कि वे उसीसे इस झगडे का निर्णय कराने को तैयार हो गए । उनकी प्रार्थना सुनकर सियार ने कहा, "यदि तुम लोग चाहते ही हो तो मैं इस मामले को हाथ मे ले ही लूगा । मैंने ऐसे हज़ारो मुकदमो का फैसला किया है। मैं पहले न्यायाधीश था न ! तुम लोग शायद इसे नही जानते !"

अब दोनो को पूरा विश्वास हो गया कि अनुभवी न्यायाधीश द्वारा जो कुछ निर्णय होगा, उचित ही होगा। उन्होने सारा मामला उसीके हाथो मे सौंप दिया । सियार ने प्रत्येक से यह शपथ ले ली कि वह उसके निर्णय को चुपचाप स्वीकार कर लेगा ।

इसके बाद दोनो ऊदबिलावो के बयान सुनकर सियार ने मछली को ध्यान से देखा। उसने उसके तीन हिस्से करवाए । उनमे से एक ऊदबिलाव को मछली

का सिर और दूसरे को उसकी पूछ देकर बीच का हिस्सा उसने अपनी फीस के हिसाब में लिया।

इस तरह वादी-प्रतिवादी की पूंजी न्यायाधीश के हाथ में चली गई। दोनों खड़े-खड़े अपनी आंखों अपनी हानि देखते रहे। सियार अपनी पूरी कमाई लेकर चलता बना।

घर आकर उसने सियारिन को उसकी मनमानी चीज भेंट की। सियारिन ने प्रसन्न होकर पूछा, "स्वामी ! यह जल का जीव आपके हाथ कैसे लगा ? आप तो पानी में शिकार करना जानते ही नहीं।"

सियार ने कहा, "इसे मैं पानी में से नहीं, दो मूढ़ जीवों के बीच में से उठाकर ला रहा हूं। यह वास्तव में उन्हीं लोगों की चीज थी, लेकिन उन्होंने आपस में लड़-झगड़कर इसे गवा दिया। आपस में विवाद करने-वाले इसी तरह हानि उठाते है। आपसी झगड़ों से घर की सम्पत्ति निकलकर राजकोष में पहुच जाती है। मैं तो न्यायाधीश बनकर इसे लूट लाया हू। अब इसपर उनका अधिकार नही है, इसलिए तुम इसे निश्चिन्त होकर खाओ।"

१३

हाय-हाय करना छोड़िए

वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त के दो पुत्र थे। उन्होने वडे पुत्र को युवराज का और छोटे को सेनापति का पद प्रदान किया था।

कुछ समय बाद राजा ब्रह्मदत्त की मृत्यु हो गई। इस परिस्थिति मे वडे राजकुमार को ही सिहासन पर वैठने का अधिकार था। पुरोहित और मन्त्रिगण उसके राज्याभिपेक की तैयारी करने लगे, लेकिन उसने राजा वनना अस्वीकार कर दिया। अपना स्थान वह स्नेह-वश अपने छोटे भाई को देना चाहता था। सबने वहुत-वहुत कहा, लेकिन उसने छोटे भाई को ही गद्दी दे दी।

छोटे राजकुमार को स्वेच्छा से राज देकर वडा राजकुमार वहा से चला गया और दूर के एक प्रान्त मे एक सेठ की नौकरी करने लगा। राजसी ठाट वाट से उसे विरक्ति हो गई थी। वह अव सीधा-सादा जीवन विताना चाहता था।

वडे राजकुमार ने अपना परिचय वहुत गुप्त रखा

था, लेकिन कुछ दिनों मे सेठ को किसी तरह सब कुछ मालूम हो गया । उस समय से सेठ उसे अपने घर में नौकर की तरह नही, बल्कि मालिक की तरह आराम से रखने लगा ।

बड़ा राजकुमार बहुत दिनों तक सेठ के परिवार में बहुत सुख से रहा । एक दिन उसे पता लगा कि राजकर्मचारी लोग गाव के खेतों पर नये सिरे से लगान बढाने के लिए उनकी नाप-जोख कर रहे है और सेठ इस मामले मे बहुत परेशान है । बडे राजकुमार ने इस अवसर पर अपने उपकारी की कुछ सहायता करना अपना धर्म समझा । उसने अपने छोटे भाई को इस आशय का एक पत्र लिख दिया कि मैं बहुत दिनों से अमुक सेठ के घर मे बडे सुख से निवास कर रहा हू, इसलिए मेरे कहने से उसका लगान माफ कर दो ।

छोटे भाई ने इस पत्र को पाते ही राजकर्मचारियो को उस सेठ से कर न लेने का आदेश भेज दिया ।

सेठ को जब पता चला कि राजकुमार ने चुपचाप उसका इतना बडा काम कर दिया है तो वह हर्ष से फूला नही समाया । उसने गांव-भर मे इसका ढिंढोरा पीट दिया ।

परिणाम यह हुआ कि गांव और प्रान्त के सभी

लोग लगान छुडवाने के लिए बडे राजकुमार के पास दौड पडे। बडे राजकुमार ने किसी को निराश नही किया। उसने हरएक के लिए राजा को पत्र लिख दिया और राजा ने बडे भाई के लिखने से सबके लगान माफ कर दिए।

अब उधर के सभी लोग बडे राजकुमार के भक्त हो गए और हृदय से उसको अपना राजा मानने लगे। उसीको वे कर भी देने लगे। इस प्रकार सारे प्रान्त मे उसीकी अखड प्रभुता स्थापित हो गई। वह सर्वसम्मति से वहा का स्वतन्त्र राजा वन बैठा। 'प्रभुता पाइ काहि मद नाही।' पहले जो व्यक्ति राज्य को तृण की तरह त्याग चुका था, वही अब राज्य की तृष्णा से व्याकुल हो गया। उसने छोटे भाई को स्पष्ट लिख दिया कि अब इस प्रान्त पर मेरा ही शासन होगा। छोटे भाई ने वडे हर्ष से उसे वहा का शासक वना दिया। इससे भी वडे राजकुमार को सन्तोष नही हुआ। उसने आसपास के कई अन्य प्रान्तो को अपने अधिकार मे करने की इच्छा प्रकट की। छोटे भाई ने उनपर भी उसकी सत्ता स्वीकार कर ली। उसकी हरएक माग पूरी होती गई, फिर भी उसका मन नही भरा। अब वह सारे राज्य को हथियाने की फिक्र मे पडा।

उसे शंका थी कि छोटा भाई आसानी से सम्पूर्ण राज्य न छोड़ेगा, इसलिए अपने राज्य से समस्त आदमियों को लेकर उसने वाराणसी पर धूमधाम से धावा बोल दिया।

बड़ी भीड़ लेकर वह राजद्वार पर पहुंचा। वहां से उसने छोटे भाई के पास 'राज दो या आकर युद्ध करो' की चुनौती भेजी।

छोटा भाई बड़े धर्मसंकट में पड़ गया। चुपचाप आत्मसमर्पण करने से लोग उसे कायर कहकर धिक्कारते। और युद्ध में बड़े भाई को मारने से भी उसे अपयश ही मिलता। विकट समस्या थी! बहुत सोचने-विचारने के बाद छोटे भाई ने बड़े भाई को उसकी दी हुई चीज वापस कर देने का ही निश्चय करके उसे सम्मानपूर्वक लाकर सिंहासन पर बैठा दिया।

अब बड़ा राजकुमार वाराणसी का राजा हो गया। एक-एक करके उसकी सभी लालसाएं पूरी हो गईं, फिर भी तृष्णा नहीं बुझी। वह आसपास के अन्य राज्यों को जीतने में लग गया। यही उसका नित्य का काम हो गया। अपने सामने वह किसी दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकता था।

इन्द्र इस राजा की बढ़ती हुई तृष्णा को देखकर

वहुत दु खी हुआ। एक दिन वह शुभ सकल्प करके ब्रह्मचारी के वेश मे राजा के पास पहुचा और उसे एकान्त मे ले जाकर वोला, "महाराज, मै तीन ऐसे नगर देखकर आ रहा हू जहा अनन्त सम्पत्ति है। वहा तो घर-घर मे सोना बरसता है। उन नगरो को जल्दी अपनी मुट्ठी मे कीजिए।"

इसे सुनते ही राजा लोभ से अन्धा हो गया और जल्दी से जल्दी चढाई करने के लिए व्यग्र हो उठा। ब्रह्मचारी इतना कहकर चुपचाप वाहर चला गया। राजा को उसका नाम-धाम पूछने का भी ध्यान नही रहा, क्योकि उसका चित्त तो कही और चला गया था। उसने मन्त्रियो को तुरन्त वुलाकर कहा, "मैंने अभी-अभी एक ब्रह्मचारी से सुना है कि कही पर तीन वहुत ही सम्पन्न नगर है। जल्दी से जल्दी सेना सजाओ। ब्रह्मचारी के वताए हुए नगरो को मै फौरन जीतना चाहता हू।"

मन्त्री ने पूछा, "महाराज, वे नगर कहा है। किधर है?"

राजा चौककर वोला, "यह तो मैंने नही पूछा। वह ब्रह्मचारी जानता है। वह उन्हे अपनी आखो से देख आया है। उसीसे पूछो, वह वाहर खडा होगा।"

मन्त्री ने बाहर जाकर ब्रह्मचारी को बहुत खोजा, लेकिन वह नही मिला। लौटकर वह राजा से बोला, "महाराज, वह तो न जाने कहां चला गया। सारे नगर मे ढूंढने पर भी उसका पता नही चला।"

राजा की छाती पर मानो वज्र गिर पड़ा। वह छटपटाता हुआ बोला, "हाय ! वह चला गया और मै छला गया ! मैने उसका स्वागत-सत्कार नही किया था, सम्भवत इसीलिए वह रुष्ट होकर चला गया ! हाय दैव, तीन-तीन महानगर मेरे हाथ आ जाते। अब मै उन्हे कहां ढूंढने जाऊं ? मैने उनका पता भी नही पूछा ! अब वे कैसे मिलेगे ?"

इस तरह पछताता हुआ राजा चिन्ता-शोक मे बहुत व्यथित हो गया। तीनों नगरो की याद आते ही उसके हृदय मे त्रिशूल चुभने जैसी पीड़ा होने लगती थी। इस दुःख मे न उसे नींद आती, न खाना पचता। धीरे-धीरे मानसिक व्यथा के कारण उसे भयंकर अतिसार हो गया। वैद्यों ने बहुत-बहुत इलाज किया, लेकिन 'ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया।'

उन्हीं दिनो बोधिसत्व तक्षशिला से आयुर्वेद की शिक्षा-दीक्षा लेकर लौटे थे। राजा की असाध्य बीमारी का हाल सुनकर वे अपनी इच्छा से उसकी चिकित्सा

करने गए। उन्होने राजद्वार पर खडे होकर राजा के पास सन्देश भेजा। राजा ने एक अनुभवहीन वैद्य से दवा कराना अस्वीकार कर दिया। लेकिन बोधिसत्त्व ने इसके लिए फिर आग्रह किया।

मरता क्या न करता! डूबता हुआ आदमी तिनके का भी सहारा खोजता है। राजा ने उस नये चिकित्सक को बुलवा लिया और कहा, "युवक! सभी वैद्यो ने इस रोग को असाध्य कह दिया है। अब तुम व्यर्थ का प्रयत्न न करो। मैं नही बचूगा।"

बोधिसत्त्व ने धैर्यपूर्वक कहा, "महाराज, घबराने की बात नही है। उचित प्रयत्न से असाध्य भी साध्य हो जाता है। आप कृपा करके यह बताइए कि यह रोग आपको कब से और कैसे हुआ?"

राजा पीडा से कराहता हुआ बोला, "अरे अनाडी वैद्य! रोग की कहानी सुनकर क्या करोगे? सीधे-सीधे दवा बताओ।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "महाराज, रोग के सम्बन्ध मे सारी बातो का पता लगाकर ही उसकी अचूक दवा दी जा सकती है। रोग के मूल को खोजकर उसपर प्रहार करने से वह सहज मे निर्मूल हो जाता है।"

उन तीन नगरो के हाथ से निकल जाने का जो
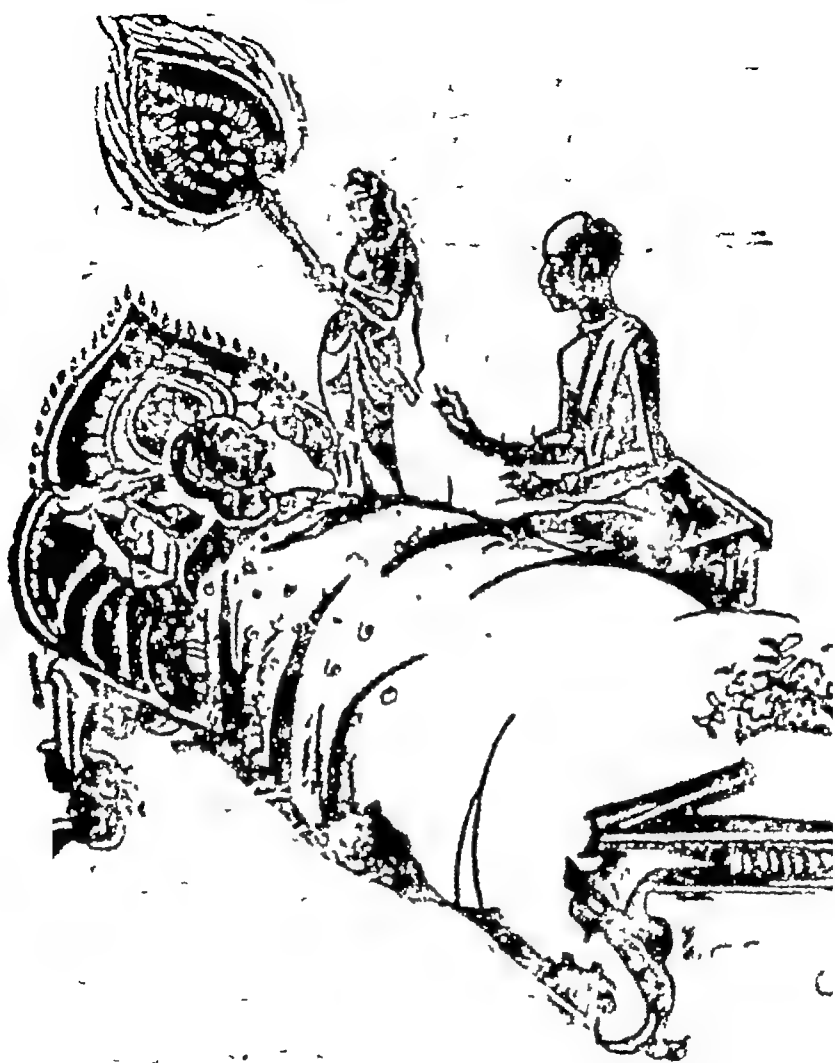
शोक राजा को हुआ था, वह उसका हाल सुनाकर बोला, "वैद्य जी ! उससे मेरे दिल को ऐसा धक्का लगा कि मैं भीतर ही भीतर चूर हो गया। मैं दिन-रात उसकी फिक्र मे घुलने लगा और धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया। आज भी प्रत्येक क्षण चित्त मे वही चिन्ता समाई रहती है। अपनी हानि का मुझे ऐसा शोक है कि मैं बता नही सकता—हाय! हाय! कैसी भूल हो गई?"

उसे सुनकर बोधिसत्त्व ने पूछा, "महाराज ! यह बताइए कि क्या इस तरह चिन्ता करने से आप भविष्य मे उन नगरो को प्राप्त कर सकेगे?"

राजा बोला, "नही भाई। अब वे कहा मिलते है—गया सो गया।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "तब व्यर्थ के लिए आप उनके पीछे क्यो परेशान होते है? आपके पास सुख-वैभव की कमी नही है। अब अधिक की कामना क्यो करते हैं? जो है, उसी को भोगिए। आवश्यकता से अधिक वैभव की लालसा न कीजिए। एक आदमी के लिए एक ही बिस्तर काफी होता है। वह चार बिस्तरो पर एकसाथ नही सो सकता। फिर एक को पाकर चार के लिए लालच क्यो करे? जो कुछ आपके पास है, वही बहुत

है। अब और नगरों को लेकर क्या कीजिएगा? आपके लिए वे फालतू ही तो होंगे। फालतू चीज़ों के पीछे अपने अमूल्य जीवन को नष्ट करना मूर्खता है। आप उनकी तृष्णा त्याग कर सन्तोष कीजिए। इसीमें आपका कल्याण है।"

राजा कुछ-कुछ स्वस्थचित्त होकर बोला, "अच्छा अब मेरे पेट के रोग की कोई दवा बताइए।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "यह पेट का रोग नहीं, मन का रोग है। इसीके लिए मैंने आपको परम गुणकारी ज्ञानौषधि दी है। आपको इसीसे लाभ होगा। चित्त से दुर्वासनाओं को निकाल दीजिए। बस आप चंगे हो जाएंगे।"

राजा ने बोधिसत्त्व के कहने से पराये धन की तृष्णा त्याग दी। उसने बीती बातों के लिए हाय-हाय करना भी छोड़ दिया। उसका चित्त स्वस्थ एवं शान्त हो गया। थोड़े ही दिनों में रोगी राजा बिना किसी दवा के सचमुच चंगा हो गया।

१४

मित्र-बल बढ़ाइए

गाव के वाहर सुनसान जगह मे तालाव के किनारे एक पेड था। उसपर एक कबूतर रहता था। थोडी दूर पर एक दूसरा पेड था। उसपर एक कवूतरी रहती थी।

एक दिन कवूतर ने कवूतरी से विवाह की इच्छा प्रकट की। कवूतरी ने हा या ना कहने से पहले उससे पूछा, "तुम्हारा कोई मित्र है ?"

कवूतर ने कहा, "नही, मेरा तो कोई साथी नही है !"

इसपर कवूतरी वोली, "तो संकट पडने पर किससे सहायता लोगे ? पहले जाकर मित्र बनाओ, तव ससार वसाने की वात सोचना।"

सीधे-सादे कवूतर ने कहा, "मेरी तो समझ मे नही आता कि किसे मित्र वनाऊ !"

कवूतरी वोली, "मित्रता करने की इच्छा हो तो वहुत-से मित्र मिल जाएगे। पूर्व मे वाज रहता है, उससे

मित्रता करो। उत्तर में वन का राजा सिंह है, उससे मित्रता कर लो। और तालाब में कछुआ है, उसे मित्र बना सकते हो।"

कबूतर ने उसकी बात मानकर इन सबसे मिलना-जुलना शुरू कर दिया। कुछ दिनों में बाज, सिंह और कछुए से उसकी अच्छी जान-पहचान और मैत्री हो गई। तब वह कबूतरी के पास दुबारा विवाह का प्रस्ताव लेकर गया। इस बार कबूतरी ने उसकी बात मान ली। दोनों का विवाह हो गया। वे एक पेड़ पर घोंसला बनाकर रहने लगे। कुछ दिनों में उनके दो बच्चे भी हो गए। उन्हें वे घोंसले में बड़े प्रेम से पालने लगे।

एक दिन कुछ जंगली आदमी शिकार की खोज में भटकते-भटकते शाम को उस तालाब के किनारे आ पहुंचे। अंधेरा हो चला था, इसलिए उन लोगों ने उसी किनारेवाले पेड़ के नीचे रात बिताने का निश्चय करके डेरा डाल दिया। रात में उन्हें वहां मच्छर काटने लगे। मच्छरों को भगाने के लिए वे लोग लकड़ियां इकट्ठी करके आग सुलगाने लगे। उसका धुआं कबूतर के घोंसले तक पहुंच गया। उसमें बैठे हुए बच्चे चिल्ला उठे। उनका चिल्लाना सुनकर एक जंगली आदमी ने अपने साथियों से कहा, 'ओहो!

इस पेड पर तो चिडियो का बसेरा है। आओ, उन्हे पकडकर इसी आग में भूना जाए। आज तो सारे दिन विना खाए ही वीता है।"

उन्हे इस समय भूख सता रही थी। इसलिए सबको यह राय बहुत पसन्द आई। वे तुरन्त अपनी मशाल जलाकर पेड पर चढने की तैयारी करने लगे। ऊपर बैठी कबूतरी सब कुछ देख-सुन रही थी। उसने तुरन्त कबूतर से कहा, 'सुनते हो जी! ये लोग हमारे बच्चो को पकडकर खाना चाहते है। ऐसे ही समय पर मित्र काम देते है। तुम जल्दी से जल्दी जाकर अपने मित्र बाज को इसकी सूचना दो।"

कबूतर दौडा हुआ बाज के पास गया और उसे जगाकर बोला, "मित्र घोर विपत्ति मे हू, सहायता करो। कुछ आदमी मेरे बच्चो को पकडकर खाने जा रहे है किसी तरह उन्हे बचाओ।"

बाज ने पूछा, "अभी वे लोग पेड पर चढे तो नही है?"

कबूतर ने कहा, "नही, लेकिन वे अपनी मशाल ठीक करके चढते ही जा रहे है।"

बाज बोला, "अच्छा तुम चलो, मैं बहुत शीघ्र आता हू।"

इसे विदा करके बाज तुरन्त जाकर एक डाल पर

[illegible] अपने परों और मुंह के भरे पानी से नहला दिया हो।

बैठ गया। जैसे ही एक आदमी मशाल बाधकर पेड पर चढने लगा, वैसे ही बाज झपटकर तालाब से अपने परो मे और मुह मे पानी ले आया। उसने मशाल बुझा दी। आदमी ने नीचे आकर फिर मशाल जलाई और उसे लेकर वह फिर चढने लगा। बाज ने इस बार भी वैसा ही किया। उन आदमियो को इसपर बडा क्रोध आया। उन्होने निश्चय कर लिया कि आज इन चिडियो को खाए विना न छोडेंगे। वे बराबर मशाल जलाकर चढते, लेकिन ऊपर से बाज उनकी आशाओ पर पानी डाल देता था। आधी रात तक यही होता रहा। इस दौड-धूप मे बाज थककर चूर हो गया।

कबूतरी ने तुरन्त कबूतर से कहा, "देखते हो, तुम्हारे मित्र बाज़ जी लगातार इतनी मेहनत करते-करते बेदम हो गए है। अब दौडकर कच्छपजी को भी बुला लाओ।"

कबूतर कछुए को बुलाने चला गया। कबूतरी ने बाज से कहा, "पक्षिराजजी, आप बहुत थक गए है, अब मेरे लिए अधिक कष्ट न करके थोडा विश्राम कर लीजिए।"

बाज ने कहा, "मेरी चिन्ता न करो। आज मित्र के लिए प्राण भी चले जाए तो मुझे कुछ शोक न

होगा ।"

उधर कबूतर से उसके संकट का समाचार सुनते ही कछुआ तुरन्त उसकी सहायता के लिए चल पड़ा । उसने पानी में से निकलने के पहले अपने शरीर में खूब कीचड़ लपेट लिया । किनारे पर आकर उस कीचड़ से उसने सारी आग बुझा दी । उन आदमियों ने क्रुद्ध होकर आपस में कहा, "आओ, आज इस कछुए को ही मारकर खाया जाए ।" वे उसे रस्सी में बांधकर खींचने लगे । लेकिन कछुआ उन्हीं को अपनी ओर खींच ले गया । वे फिसलकर तालाब में जा गिरे ।

तालाब से निकलने के बाद उनका क्रोध और भी बढ़ गया । वे आपस में बोले, "चलो फिर आग बनाकर मशाल जलाओ । आज इन चिड़ियों को खाकर ही रहेंगे ।"

इसको सुनते ही कबूतरी ने कबूतर से कहा, "सुनते हो जी, ये लोग अब जिद करके बच्चों के पीछे पड़ गए हैं । रात में यदि कुछ न कर पाए तो सवेरा होते ही ये जरूर बच्चों को मार डालेंगे । तुम तुरन्त अपने मित्र सिंह को बुला लाओ ।"

कबूतर ने जाकर सिंह को जगाया । सिंह झटपट चलने को तैयार हो गया । कबूतर को आगे ही भेज-

कर पीछे-पीछे वह दौडता हुआ तालाब के पास आ पहुचा। वहां पहुचकर जैसे ही उसने दहाडा वैसे ही सारे आदमी शाल-मशाल फेककर भाग खडे हुए। कबूतर-कुल का महासकट मित्रो की कृपा से टल गया। कबूतरी ने सबको बहुत-बहुत धन्यवाद देकर कबूतर से कहा, "आज यदि ये मित्र न होते तो हमारे कुल का सर्वनाश हो जाता। विपत्ति में मित्र ही काम देते है। इसलिए छोटे-बडे सबके लिए अधिक से अधिक मित्र बनाना हितकारी है।"

मुखिया दुर्गम मार्ग मे उसका साथ देने को तैयार हो गया। अपने अस्त्र-शस्त्र और इने-गिने आदमियो को लेकर वह व्यापारी के साथ जगल की ओर चल पडा। व्यापारी ने बैलगाडियो को आगे बढाया।

बीच जगल मे पहुचते ही एकाएक पाच सौ चोरो ने चारो ओर से हल्ला मचाते हुए हमला कर दिया। व्यापारी के संगी-साथी उन्हे देखते ही डर के मारे जमीन पर गिर पडे और बेहोश हो गए। व्यापारी मौत की घडिया गिनने लगा। चोर-बदमाश लोग तीर-तलवार चमकाते हुए जैसे ही पहाडियो के पास पहुचे, वैसे ही वीर मुखिया हाथ मे तलवार लेकर सिंहनाद करता हुआ उनपर टूट पडा। उसने अपने साथियो को ललकारकर कहा, "आगे बढो नौजवानो ! देखते क्या हो ! एक भी बदमाश बचकर जाने न पाए।"

मुखिया मुट्ठी-भर आदमियो को लेकर बदमाशो की सेना से भिड गया। उसकी मार और ललकार से चोरो के दिल दहल गए। वे अपनी-अपनी जान लेकर इधर-उधर भाग निकले। किसीने पीछे मुड़कर ताका भी नही।

विजयी मुखिया ने व्यापारी को सकुशल जगल के पार पहुचा दिया। वहां गाडिया खोल दी गई। व्यापारी ने मुखिया और साथियों को अच्छी तरह खिला-

पिलाकर खूब इनाम दिया। जब वे विदा होने लगे तो व्यापारी ने कहा, "मैं तो आपका अद्भुत पराक्रम देखकर दग रह गया। पांच सौ चोर-बदमाशो को अस्त्र-शस्त्र के साथ हमला करते देखकर भी आपने कैसे उनसे भिडने का साहस किया ? हम लोगो की जान तो उनको देखते ही सूख गई थी। आप क्यों नही डरे ?"

मुखिया ने कहा, "सेठ ! हम अपनी जान को हथेली पर रखकर काम करते हैं। तुमसे अपनी मजदूरी लेकर हमने अपना जीवन तुम्हारे लिए न्योछावर कर दिया था, हमे जीने-मरने की परवाह नही थी। उस समय तो जान देकर भी तुम्हारी रक्षा करना ही हमारा धर्म था। मृत्यु को उपस्थित देखकर भी हम नही डरे क्योकि हम मर-मिटने का हौसला लेकर चले थे। जो आदमी अपने जीवन से अधिक अनुराग रखता है, वह कभी पूरा पराक्रम नही दिखा सकता। हम लोग जीवन का मोह छोड चुके थे, इसलिए हम इतनी हिम्मत दिखा सके। तीर-तलवार का भय तो उसे होता है जिसे हर हालत मे अपने प्राण बचाने की ही फिक्र रहती है। शूरता तो त्याग-बलिदान से आती है।"

व्यापारी वनरक्षको की वीरता की बारबार सराहना करता हुआ वहा से चल पडा।

१६

सुशीलता की परीक्षा

प्राचीन समय में एक आचार्य के गुरुकुल में पाँच सौ युवक विद्यार्थी पढ़ते थे। आचार्य अपनी युवती कन्या के लिए उन्हींमें से एक सुयोग्य वर चुनना चाहते थे। उन शिष्यों में कोई तो शरीर में स्वस्थ एवं सुन्दर था, कोई पढ़ने-लिखने में तेज था और कोई वचन-व्यवहार में बहुत सौम्य था। लेकिन आचार्य किसी एक युवक को अपनी कन्या देना चाहते थे जो सबसे अधिक सुशील एवं सदाचारी हो।

शिष्यों के शील-सौजन्य की परीक्षा लेने के लिए एक दिन उन्होंने सब विद्यार्थियों को अपने पास बुलाकर कहा, "मेरे शिष्यो! तुम्हें मालूम ही है कि मेरी कन्या युवती हो गई है। मुझे अब जल्दी से जल्दी उसका शुभ विवाह करना है लेकिन तुम लोगों से मेरी हालत छिपी नहीं है। कन्या को विवाह में देने के लिए मेरे पास गहने-कपड़े नहीं हैं। ऐसी दशा में मेरे प्यारे बच्चो! तुम लोग अपने इस बूढ़े गुरु की सहायता करो

तो मेरा बेडा पार हो जाएगा। मैं रोम-रोम से तुम्हे आशीर्वाद दूगा। बोलो, मैं जो कहू करोगे ?"

शिष्यो ने कहा, "हा, गुरुदेव! कहे, क्या आज्ञा है ?"

आचार्य बोले, "विद्यार्थियो ! तुम लोग अपने-अपने घरो से कुछ गहने-कपडे चुपके से उठा लाया करो, लेकिन शर्त यह है कि चुराते-समय उन चीजो पर किसी की दृष्टि न पडे। जिस चीज़ पर किसीकी दृष्टि पड जाएगी उसे मैं अशुभ मानकर त्याग दूगा। सो बच्चो ! बहुत होशियारी से मेरी बेटी के लिए गहने-कपडे जमा कर दो।

उस दिन के बाद प्राय सभी शिष्य रोज गुरुजी के लिए कुछ न कुछ चुराकर लाने लगे। गुरुजी उन्हे बडी प्रसन्नता से लेकर अपने घर मे अलग रख देते थे। केवल एक विद्यार्थी ऐसा था, जो कभी कुछ नही लाया। एक दिन गुरुजी उसको डाटते-फटकारते हुए बोले, "क्यो रे ! तू मेरे लिए अभी तक कुछ भी नही ले आया क्या बात है ?"

उस विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "देव, आप कह चुके है कि जिस चीज़ को कोई चुराते देख लेगा, उसे आप नही लेंगे। मैं जहा भी चोरी करने जाता हू, वहा कोई न कोई खडा देखता रहता है। इसीलिए साहस नही

होता। अभी तक मुझे एक भी ऐसा स्थान नही मिला जहां कोई न कोई न हो ?"

आचार्य बनावटी क्रोध दिखाकर बोले, "यह सब बहाना है। घर मे जब कोई न रहे, तब चुपके से कोई चीज उठा लाया करो।"

शिष्य ने कहा, "आर्य ! कोई दूसरा रहे या न रहे, हर हालत मे मैं तो वहां रहता ही हूं। और कोई भले ही न देखे, लेकिन कुकृत्य को अपनेसे कैसे छिपाऊं! पाप के लिए तो ससार में मुझे कोई गुप्त स्थान नहीं दिखाई पडता।"

आचार्य जिसे खोजते थे, वह उन्हे मिल गया। वे प्रसन्न होकर बोले, "वत्स तुम्हारा ही विद्या पढना सार्थक है। तुमने मेरे कहने से भी शील-सौजन्य का परित्याग नहीं किया, यह तुम्हारी बहुत बडी आत्म-विजय है। वास्तव में, मुझे कन्या के विवाह के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मेरे पास काफी धन है। मैं तो यह देखना चाहता था कि कौन कितने पानी मे है। इस परीक्षा मे केवल तुम्ही सफल हुए। इस लिए मैं तुम्हारे ही साथ अपनी कन्या का विवाह करूंगा।"

इसके बाद आचार्य ने चोर विद्यार्थियो के प्रति-क्रोध-तिरस्कार दिखाते हुए सबकी चीज़ें लौटा दी।

● ● ●